ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

दयानन्द-सन्देश

सृष्टिसंवत्-विशेषाङ्क

प्रकाशक :

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

२ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७

फोन २२९५४७, ५२८३६०,

वर्ष ४ अङ्क-५ दयानन्दाब्द १५२

सृष्टि संवत् १,९६,०८,५३,०७६

मार्च, १९७७ मूल्य १-०

विषय सूची

सृष्टि-संवत् विचार लेo दीपचन्द आर्य (प्रकाशक) पृ० १-२६

- महर्षि दयानन्द की मान्यता २
- भ्रम तथा विवाद के कारण पर विचार ४
- महर्षि दयानन्द और मयासुर का विरोध ६
- क्या ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में सृष्टि-संवत् विषयक मिस्टेक हुई है ? ११
- आर्य जगत् की प्रतिक्रिया १६
- क्या दोनों संवत् ठीक हैं ? १६
- तीन चतुर्युगी पहले तीन पश्चात् मानना ठीक नहीं २३
- उपसंहार २६

मयासुर रचित आधुनिक सूर्यसिद्धान्त की अप्रामाणिकता
लेo ब्र० वेदव्रत मीमांसक २७-७४

- महर्षि दयानन्द के विचार २७
- सूर्यसिद्धान्त का महर्षि से विरोध २६
- सूर्यसिद्धान्त पर ४१ आक्षेप ३०

सृष्टि-संवत् विषय **लेo राजवीर शास्त्री** ७५-१०४

- विभिन्न भ्रान्तियाँ और उनका निराकरण ७५
- उपसंहार ६६

ई वैदिक पुस्तकालय मुम्बई
आचार्य धर्मेश्वर आर्य
सम्पर्क - 9029421718.

सृष्टि-संवत् विचार

(दीपचन्द आर्य प्रकाशन)

वैदिक धर्म की मान्यता है कि सृष्टि उत्पन्न हुई है। इसका उत्पन्न करने वाला परमात्मा है। अतः सृष्टि उत्पन्न हुए कितना काल हुआ यह प्रश्न स्वाभाविक है। इसका उत्तर देना भी आवश्यक है महर्षि दयानन्द ने इस उत्तर की आवश्यकता का अनुभव किया। ईसाई और मुसलमानों के साथ महर्षि का मेला चान्दापुर में धर्म विचार हुआ था जो छपा हुआ है। वहां पर विचारणीय पांच विषयों में महर्षि ने एक विषय यह भी रखा—

पहला विषय--"सृष्टि को परमेश्वर ने किस चीज से किस समय और किस लिए बनाया।"

किस समय का उत्तर पादरी स्काट साहब ने निम्न दिया—

"यद्यपि यह भी हम नहीं जान सकते कि उसने कब इस संसार को रचा परन्तु उसका आदि तो है। वर्षों की गणना हम को नहीं जान पड़ती न सिवाय ईश्वर के कोई जान सकता है।"

मौलवी मोहम्मद कासिम साहब ने कहा—

"कब से यह संसार बना यह कहना व्यर्थ है क्योंकि हम को रोटी खाने से काम है। न यह कि रोटी कब बनी है।"

उक्त दोनों मतावलम्बी आज भी इससे अधिक उत्तर नहीं देते। क्योंकि इन मतों की उत्पत्ति का समय बहुत न्यून है। इस प्रश्न के उत्तर में बहानाबाजी उचित नहीं। जगत् को उत्पन्न हुआ मानने वालों के लिये उत्तर देना आवश्यक है। महर्षि दयानन्द ने निम्न उत्तर दिया—

महर्षि दयानन्द की मान्यता

"अब यह कि ईश्वर ने किस समय जगत् को बनाया है अर्थात् संसार को बने हुए कितने वर्ष हो गये? इसका उत्तर दिया जाता है।"

सुनो भाइयो! इस प्रश्न का हम लोग तो उत्तर दे सकते हैं अन्य लोग नहीं दे सकते।...१९६०८५२९७६ वर्षों का **भोग** हो चुका है और अब २३३३२२७०२४ वर्ष इस सृष्टि को भोग करने के बाकी रहे हैं। और ज्योतिष की रीति से जो वर्षपत्र बनता है उसमें भी यथावत् सब को क्रम से लिखते चले आते हैं। अर्थात् एक २ वर्ष घटाते और एक एक वर्ष भोगने में आज तक बढ़ाते आये हैं। इस बात में सब आर्यावर्त देश का इतिहास एक है। फिर जब कि जैनमत वाले और मुसलमान इस देश के इतिहासों को नष्ट करने लगे तब आर्य लोगों ने सृष्टि के इतिहास को कण्ठ कर लिया। सो बालक से लेके वृद्ध तक नित्य प्रति उच्चारण करते हैं कि जिसको संकल्प कहते हैं और वह यह है।

"ओम् तत्सत् श्रीब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्द्धे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे आर्यावर्त्तान्तरैकदेशेऽमुकनगरेऽमुक-[संवत्सरायनर्तुमासपक्षदिननक्षत्रलग्नमुहूर्त्तेऽत्रेदं कार्यं कृतं क्रियते वा॥

जो इसको ही विचार ले तो इससे सृष्टि के वर्षों की गणना बराबर जान पड़ती है।

जो कोई यह कहे कि हम इस बात को नहीं मान सकते तो उसका उत्तर यह है कि जो परम्परा से मिती, वार दिन चढ़ाते चले आते हैं... तो इसको मिथ्या कोई नहीं कह सकता। जैसे कि बहीखाते में प्रति दिन मिती, वार लिखते हैं और उसको कोई झूठ नहीं कह सकता।... इसलिये हम लोगों के मत में तो जगत् के वर्षों की गिनती बन सकती है और किसी के मत में कदाचित् नहीं। इसलिये यह व्यवस्था सृष्टि

की उत्पत्ति के वर्षों की सब को ठीक माननी उचित है।"

(सत्यधर्म विचार मेला चान्दापुर)

"प्रश्न—जगत् की उत्पत्ति में कितना समय व्यतीत हुआ।

उत्तर—एक अरब छानवे क्रोड़ कई लाख और कई सहस्र वर्ष जगत् की उत्पत्ति और वेदों के प्रकाश होने में हुए हैं। इसका स्पष्ट व्याख्यान मेरी बनाई भूमिका में लिखा है देख लीजिये।"

(सत्यार्थप्रकाश अष्टम समु०)

प्र०—वेदों की उत्पत्ति में कितने वर्ष हो गये हैं।

उ०—एक बृन्द छानवें करोड़ आठ लाख बावन हजार नौ सौ छयत्तर अर्थात् (१९६०८५२९७६) वर्ष वेदों की और जगत् की उत्पत्ति में हो गये है।

"एक हजार चतुर्युगियों की ब्राह्मदिन संज्ञा रक्खी है। और हजार चतुर्युगी पर्यन्त सृष्टि को मिटा के प्रलय अर्थात् कारण में लीन रखता है। उस का नाम ब्राह्मरात्रि रखा है।...(१९६०८५२९७६) एक अर्ब छानवे करोड़ आठ लाख बावन हजार नौ सौ छयत्तर वर्ष इस सृष्टि की तथा वेदों की उत्पत्ति में भी व्यतीत हुए हैं और (२३३३२२७०२४) वर्ष इस सृष्टि को **भोग** करने के बाकी रहे हैं।

आर्य लोग नित्यप्रति ओं तत्सत् परमेश्वर के इन तीन नामों का प्रथम उच्चारण करके कार्यों का प्रारम्भ और परमेश्वर का ही नित्य धन्यवाद करते चले आये हैं।...जैसे बहीखाते में मिती डालते हैं वैसे ही महीना और वर्ष बढ़ाते घटाते चले आये हैं।...यही इतिहास आज पर्यन्त सब आर्यावर्त्त देश में एकसा वर्तमान हो रहा है।...जो सृष्टि की उत्पत्ति से लेके बराबर मिती, वार लिखते न आते तो इस गिनती का हिसाब ठीक ठीक आर्य लोगों को भी लगाना कठिन होता।... सृष्टि की उत्पत्ति प्रलय तथा वेदों की उत्पत्ति के वर्षों की गिनती में

किसी को किसी प्रकार का भ्रम न हो, सो यह बड़ा उत्तम काम है।"
(ऋग्वेददि भाष्यभूमिका)

मौलवी अब्दुलरहमान साहब न्यायाधीश से महर्षि का उदयपुर में शास्त्रार्थ हुआ। जो शास्त्रार्थ लिखा गया उसमें भी उक्त संवत् का ही प्रतिपादन किया=

"प्रश्न मौलवी साहब—मनुष्य की उत्पत्ति कब से है और अन्त कब होगा ?

उत्तर स्वामी जी—एक अरब छयानवें करोड़ और कितने लाख वर्ष उत्पत्ति को हुये और दो अरब वर्ष से कुछ ऊपर तक और रहेगी। इसका हिसाब मेरी बनाई भूमिका के पहले अङ्क में लिखा है।"

उक्त चारों स्थानों पर सृष्टि संवत् में कोई किसी प्रकार का भी भेद नहीं है। वेद और जगत् उत्पत्ति का काल एक ही माना है। सत्यार्थ प्रकाश में तो केवल जगदुत्पत्ति काल ही प्रश्न है। अतः इसको केवल वेदोत्पत्ति संवत् कहना कदापि उचित नहीं है। उक्त संवत् के विरुद्ध महर्षि ने कहीं भी नहीं लिखा।

भ्रम तथा विवाद के कारण पर विचार

'एक जैसा वर्तमान है' इस ऋषि वाक्यार्थ के तात्पर्य को समझने में आर्यों को भ्रम हुआ। क्योंकि वर्तमान समय मयासुरानुसार अन्य लोग १९७२९४९०७७ वर्ष में से चराचर की सृष्टि बनने के काल को कम करके १९५५८८५०७८ वर्ष लिखते हैं। आर्यों ने समझा कि महर्षि सूर्यसिद्धान्त को पठन-पाठन में लिखते हैं प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं। सूर्यसिद्धान्त में १४ मन्वन्तरों के काल के अतिरिक्त १५ सन्धियों का काल भी लिखा है जिसके मिलाये बिना सृष्टि के कुल काल (४३२००००००) की गणना भी पूरी नहीं होती। अतः ऋषि से भूल हो गई प्रतीत होती है अतः ऋषि संवत् में संशोधन करके मयासुरानुसार संवत् का आर्य जगत् में प्रचलन कर दिया गया।

ज्योतिष ग्रन्थों का पठन-पाठन आर्य विद्वानों में नहीं है। इसलिये वर्तमान मयासुररचित सूर्यसिद्धान्त को ही ऋषिप्रतिपाद्य सूर्यसिद्धांत मान लिया। किन्तु ऋषि दयानन्द तो वसिष्ठ ऋषिकृत सूर्यसिद्धान्त को ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के पठन-पाठन प्रकरण में प्रामाणिक लिखते हैं। महर्षि दयानन्द ने पठन-पाठन में समस्त आर्ष ग्रन्थों का ही प्रतिपादन किया है। अनार्ष ग्रन्थ का एक का भी नहीं। वर्तमान यह ग्रन्थ तो मयासुर का रचित है। इसमें बहुत अधिक मान्यतायें वेदविरुद्ध और महर्षि मान्यता-विरुद्ध हैं, जिनका प्रतिपादन ब्रह्मचारी वेदव्रत मीमांसक ज्योतिष शास्त्रज्ञ ने पृथक् इस ग्रन्थ में किया है। महर्षि दयानन्द ने मयासुर रचित सूर्यसिद्धान्त का इस विषय में विचार करते हुए अथवा अपने समस्त ग्रन्थों में कहीं एक भी प्रमाण नहीं दिया। इस ग्रन्थ को प्रामाणिक मानते तो इस विषय में तो अवश्य इस ग्रन्थ का प्रमाण देते। क्योंकि सृष्टिसंवत् का मुख्यरूप से मयासुर ने प्रतिपादन किया है। किन्तु महर्षि ने तो सन्धिकाल विषयक मयासुर की मान्यता के विरुद्ध प्रतिपादन किया है। यदि कोई कहे कि मयासुर के विरुद्ध मेरा विचार है ऐसा ऋषि ने क्यों नहीं लिखा? तो यह कहना ठीक नहीं क्योंकि किसी विषय में विरुद्ध लेख करते हुए ऐसा प्रतिपादन आवश्यक नहीं। महर्षि को षट्दर्शनों के अविरोध का प्रतिपादन करते हुए विपक्षियों को लिखना पड़ा कि तुम को विरोधाविरोध का ज्ञान नहीं। विरोधाविरोध के विषय में महर्षि ने एक पत्र में निम्न लेख लखा—

"भीमसेन जो व्याकरणादि शास्त्रों को पढ़ा है उतना ही उसका पाण्डित्य है अन्यत्र वह बालक है। इसको इस बात की खबर भी नहीं कि इस लेख से कहां कहां विरोध होकर क्या विपरीत परिणाम होंगे। इसलिए यह नोट जैसा शोध के भेजा है वैसा ही छपवाना।" (ऋषि दयानन्द के पत्र-विज्ञापन भगवद्दत्त साम्पादित पृ० ३३ पत्र-सं० ३९)

महर्षि ने मयासुर के विरोधी मान्यता वचन लिख दिये। अतः मयासुर का विरोध नहीं किया, यह कहना अनुचित है।

बौद्ध और जैन सृष्टि की उत्पत्ति ही नहीं मानते एवं ईसाई, मुसलमान आदि विदेशी सृष्टि उत्पत्ति का बहुत थोड़ा काल मानते हैं। अतः सृष्टि-संवत् में मुख्य विरोध इस प्रकार के लोगों से था। ऐसे अवसर पर आपस के नाम मात्र विरोध का खुलकर खण्डन करना समयानुकूल भी नहीं था। वेदादि शास्त्रों के मानने वालों की सृष्टि-संवत् विषयक मूल मान्यता में बिलकुल भी भेद नहीं। ऋषि का एक जैसा वर्तमान कहना ठीक ही है। क्योंकि सभी लोग ऋषि प्रमाण में दिये सकंल्प पाठ के आधार पर ही काल-गणना करते हैं। इसमें किसी का किञ्चित् भी विरोध नहीं है। यदि इस पाठ का प्रचलन नहीं होता तो सृष्टि संवत् की गणना का यथार्थ होना दुर्लभ था। मन्वन्तर और युगों के कालों का प्रामाणिक कथन मनुस्मृति में है। जिसको भी सभी मानते हैं। महर्षि ने इन सर्वमान्य आधारों पर ही सृष्टि-संवत् के काल की संख्या निर्धारित की हैं।

जिस प्रकार सृष्टि-संवत् को एक जैसा वर्तमान लिखा है इस प्रकार ही अपने मन्तव्यों को भी लिखा है—

"अब जो वेदादि सच्छास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिनको कि मैं भी मानता हूँ, सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूँ।"

यहां सब वेदादि शास्त्रों का एक प्रकार का मन्तव्य है ऐसा महर्षि लिखते हैं। किन्तु अन्य लोग वेदादि शास्त्रों में विरुद्धता का भी प्रतिपादन करते हैं। अन्य लोग तो षट्दर्शनों को वेदों के उपाङ्ग मानकर भी उनमें विरुद्धता बताते हैं, जो वास्तव में उनकी भ्रान्ति है। जैसे उनकी इस मान्यता का ऋषि ने आदर नहीं किया। ऐसे ही संकल्प-पाठ और मनु प्रमाणों के आधार पर ऋषि ने सृष्टि-संवत् की साम्यता

का प्रतिपादन कर दिया। क्योंकि अन्य लोग भी इन दो को प्रामाणिक मानते हैं।

मयासुर को भ्रम इसलिए हुआ कि मनु के हिसाब से सृष्टि (कल्प) का काल पूरा नहीं होता था। और छः चतुर्युगी काल के विषय में मनु ने स्पष्ट कुछ उल्लेख किया नहीं। अतः मयासुर ने अपनी काल्पनिक मान्यता से समस्या का समाधान कर दिया। यह कोई बहुत आश्चर्य-जनक घटना भी नहीं क्योंकि मयासुर के समय में तो ऋषि का लेख नहीं था और अन्य स्थानों पर उसका इस विषय का समाधान नहीं मिला। एवं मयासुर के समय वेदादि सच्छास्त्रों की सत्य मान्यताएं भी लुप्त थीं, जिनके प्रकाश में मयासुर ठीक निर्णय कर लेता। किन्तु अब तो आर्यों के सामने छः चतुर्युगी की समस्या का समाधान करने वाला महर्षि का लेख है एवं वेदादि सच्छास्त्रों की सत्य मान्यता भी ऋषि ने बता दी है। फिर भी आर्यों को भ्रम हो गया और महर्षि के शुद्ध संवत् को अशुद्ध कर दिया। सृष्टि संवत् में महर्षि से कोई भूल, मिस्टेक आदि नहीं हुई है। उन्होंने यथार्थ ही प्रतिपादन किया है।

उक्त संकल्प पाठ में आये मन्वन्तर, युगों आदि के काल की संख्या का कथन सर्वप्रथम मनुस्मृति में हुआ जो कि सृष्टि की आदि में हुई। मयासुर रचित सूर्यसिद्धान्त तो थोड़े काल पूर्व का बना हुआ है।

मयासुर की संख्या में थोड़े भेद आने का कारण यह हुआ कि मनु जी ने कल्प में १४ मन्वन्तर और प्रति मन्वन्तर ७१ चतुर्युगी लिखी है। इससे ९९४ चतुर्युगी हुई। किन्तु एक कल्प में १००० चतुर्युगी होती है। इस छः चतुर्युगी के अन्तर का मनुस्मृति में स्पष्ट कोई समाधान नहीं मिलता। अतः सृष्टि-संवत् पर विचार करते हुए सूर्यसिद्धान्त में मयासुर ने निम्न समाधान कर दिया—

युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते।
कृताब्दसंख्या तस्यान्ते सन्धिप्रोक्तो जलप्लवः॥ सूर्यसि० १।१८॥

अर्थ—७१ चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर होता है। मन्वन्तर के अंत में सत्युग के बराबर सन्धि होती है जिसमें जलप्लव होता है।

स सन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दशः।

कृतप्रमाणः कल्पादौ सन्धिः पञ्चदशः स्मृतः॥ सूर्यसिद्धांत १।१९॥

अर्थ—एक कल्प में सन्धि के सहित १४ मन्वन्तर होते हैं। एक सन्धि कल्प के आदि में होती है। कुल १४ मन्वन्तर और १५ सन्धियाँ एक कल्प में होती हैं।

मयासुर का १५ सन्धियों से समाधान, प्रमाण और युक्ति-पूर्वक नहीं

१. उक्त मान्यता में किसी शास्त्र का प्रमाण नहीं। मनुस्मृति में भी इसका उल्लेख नहीं। एवं इस ग्रन्थ से पूर्व बने ज्यौतिष के किसी भी ग्रन्थ में यह मान्यता नहीं। इस ग्रन्थ के पश्चात् बने ग्रन्थों में ही इसकी मान्यता मिलती है। अतः यह मान्यता प्रामाणिक नहीं।

२. सृष्टि बनने में समय अवश्य लगता है इस शास्त्रीय मान्यता का उक्त मान्यता से विरोध है। क्योंकि जलप्लव सृष्टि के प्रारम्भ में ही हो गया जब कि पृथिवी और जल तो दोनों निर्मित-पदार्थ हैं।

३. १५ सन्धियों की मान्यता से चतुर्युगियों की संख्या तो ९९४ ही रहेगी। इस सृष्टि की युग-संख्या एक सहस्र है। अतः वेदादि शास्त्रों से विरोध आयेगा।

४. संकल्प पाठ में सन्धि का कथन नहीं है। अन्यथा मयासुर की तरह संकल्प पाठ में भी सन्धि का कथन होता।

५. स्वयं मयासुर के वचन से भी विरोध है:—

ग्रहर्क्षदेवदैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम्।

कृताद्रिवेदा दिव्याब्दा शतघ्नो वेधसो गताः॥ (सूर्य सि० १-२४)

अर्थ—कल्प के आरम्भ से दिव्यमान के ४७४०० वर्ष बीतने पर ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्यादि चराचर की सृष्टि हुई। इन दिव्य वर्षों के एक करोड़ सत्तर लाख चौंसठ सहस्र वर्ष होते हैं। सन्धिकाल सत्रह

लाख अट्ठाईस सहस्र (१७२८०००) वर्ष का माना है। जिसका इस वचन से विरोध है। क्योंकि ग्रह, नक्षत्र आदि उत्पन्न ही नहीं हुए थे पुनः जलप्लव कहां और कैसे हुआ? वैसे यह वचन भी काल्पनिक है क्योंकि इतने वर्षों के पश्चात् चराचर की सृष्टि हुई, यह भी प्रामाणिक ग्रन्थों में नहीं है। मनु के प्रमाण से तो छः चतुर्युगी काल अर्थात् २५९२०००० वर्ष ज्ञात होता है। एवं छः चतुर्युगी का भी इससे समाधान नहीं होता, उल्टी वह गुत्थी उलझती है।

६. सन्धियों को जोड़कर माना हुआ सृष्टि संवत् ऐतिहासिक कदापि नहीं कहा जा सकता। ससन्धिसंवत् की मान्यता युक्तिपूर्वक विपक्षियों को नहीं समझाई जा सकती।

७. सन्धि दो के मध्य में होती है। यदि मन्वन्तरों के मध्य में सन्धि होगी तो सन्धि १३ होगी १५ नहीं। जिनसे सृष्टिकाल पूरा नहीं हो सकता। अतः स्पष्ट है कि सृष्टिकाल को पूरा करने के लिए १५ सन्धियों की कल्पना की गई है। जिसमें अनेक दोष हैं।

८. महर्षि की मान्यता है कि यह सृष्टि, वेद, प्राचीन मनुस्मृति आदि ग्रन्थ भी बराबर वर्तमान रहते हैं। जलप्लव होने के पश्चात् मानव आदि की सृष्टि-रचना तथा वेदज्ञान क्या परमात्मा ने पुनः दिया? अर्थात् जलप्लव होने के पश्चात् प्राणी रहते हैं अथवा नहीं, इसका मयासुर ने कोई संकेत नहीं किया। प्राचीन प्रामाणिक वेदादि शास्त्रों में प्रतिमन्वन्तर इस प्रकार के जलप्लव का कहीं भी कथन नहीं।

९. इस मान्यता में सृष्टि और प्रलय का लक्षण भी नहीं घटता। केवल तुकबन्दी के आधार पर ६ चतुर्युगी के काल को १५ सन्धियों में बिभक्त कर दिया है।

महर्षि दयानन्द और मयासुर का विरोध

ऋषि दयानन्द ने सृष्टि-संवत् विषय का गम्भीरता से अध्ययन

किया। मयासुर की मान्यता भी उनके सामने थी। किन्तु उन्होंने उसकी मान्यता को कहीं भी प्रस्तुत तथा स्वीकार नहीं किया। किन्तु अपने बताये १६६०८५२९७६ संवत् को प्रस्तुत करते हुए उस संवत् को जिस प्रकार का बताया, उससे मयासुर के संवत् का विरोध है। महर्षि ने छः चतुर्युगी काल का निम्न समाधान किया है—

१. महर्षि जगदुत्पत्ति और वेदोत्पत्ति का काल एक मानते हैं।

२. इस संवत् को मानवों का गिना हुआ मानते हैं।

३. यह मानवों का भुक्त काल है।

४. "जब पर्यन्त हजार चतुर्युगी व्यतीत न हो चुकेगी तब पर्यन्त ईश्वरोक्त वेद का पुस्तक यह जगत् और हम सब मनुष्य लोग भी ईश्वर के अनुग्रह से सदा वर्तमान रहेंगे"। (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका) इस वचन से भी विरोध आता है क्योंकि मयासुर की तो ९९४ चतुर्युगी पूरी होंगी और वह भी नहीं क्योंकि प्रलय में होने वाली एक सन्धि भी इसमें सम्मिलित होगी। वेद का तो मयासुर ने कथन ही नहीं किया। मालूम पड़ता है कि उसका वेद से कोई विशेष प्रयोजन नहीं।

५. मयासुर ने छः चतुर्युगी का समाधान ऋषि की उक्त शैली से बिलकुल भी नहीं किया। मयासुर को वेदादिशास्त्रों की मान्यताओं के साथ समन्वय का पता ही नहीं था।

महर्षि की मान्यता है कि प्रभु ने मानव को युवावस्था में उत्पन्न किया और उत्पन्न करते ही उसको वेद-ज्ञान दे दिया। अतः जगत् की उत्पत्ति और वेदोत्पत्ति का एक काल है। इस बात को ऋषि ने अनेक स्थानों पर कहा। महर्षि ने छः शास्त्रों में परस्पर अविरोध प्रतिपादित करते हुए लिखा है—

"वैशेषिक में समय लगे विना बने ही नहीं"। (स० प्र० अष्टम समु०) अतः सृष्टि बनने में भी काल अवश्य लगा है। मानव जिस काल में

नहीं था उस काल को मानव नहीं गिन सकता। उस काल को येन केन प्रकारेण यदि सृष्टि-संवत् में जोड़ा जाता है तो सृष्टि-संवत् ऐतिहासिक कदापि नहीं कहा जा सकता। ऋषि दयानन्द तथा महर्षि मनु तो ऐतिहासिक सृष्टि-संवत् का कथन करते हैं जो बुद्धिसंगत और दोष-रहित है। जिसको मानने के लिये प्रत्येक को बाध्य होना पड़ता है। महर्षि दयानन्द ही मनु के प्रमाणों को ठीक समझ सके हैं और वेदादि सच्छास्त्रों के साथ समन्वय कर सके हैं। मयासुर की मान्यता से तो बहुत दोष उत्पन्न होते हैं, जिनका ऊपर कथन कर चुके हैं।

क्या ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में सृष्टि-संवत् विषयक मिस्टेक हुई है ?

सत्यार्थप्रकाश प्रकाशन के लिए हमने अनेक संस्करणों के पूरे सत्यार्थप्रकाश के पाठों को द्वितीय संस्करण के साथ मिलाया। पता चला पाठभेद तेजी से बढ़ते आ रहे हैं। स्वामी वेदानन्द के स्थूलाक्षर संस्करण में बहुत अधिक मनचाहे संशोधन मिले। ट्रस्ट ने संशोधनों के विरुद्ध पुस्तक छपाई, लेख भी लिखे, जिसमें विशेष रूप से इस संस्करण की समीक्षा थी। किन्तु विपक्ष ने चुप्पी साध ली। पुनः इस अनुचित कार्य को रोकने के लिए सत्यार्थप्रकाश, संस्कार विधि तथा ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के ऋषि जीवन काल में छपे अन्तिम संस्करणों को प्रयत्न से प्राप्त कर उनको फोटो आफसेट प्रिण्ट से छपा दिया। ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका छापते समय रामलाल कपूर ट्रस्ट के संस्करण को मिलाया और उसके संशोधनों तथा पाठविरुद्ध टिप्पणियों की प्राक्कथन में समीक्षा की। सर्व प्रथम १९६९ में सृष्टि-संवत् विषय पर उस संस्करण में निम्न टिप्पणी थी।

"भुक्त काल १९६०८५२९७६+भोग्यकाल २३३३२२७०२४ कुल ४२९४०८०००० वर्ष" महर्षि का पाठ था।

नोट—यह ७१ × १४ = ९९४ चतुर्युगियों का काल है किन्तु एक कल्प में एक सहस्र चतुर्युगी होती हैं। यहां श्री मीमांसक जी ने टिप्पणी में लिखा—

"यहां वि० सं० १९३३ तक इस कल्प के भुक्त वर्षों की और भोगे जाने वाले अगले वर्षों की जो संख्या लिखी है उसमें एक भूल हो गई है। इस कारण भुक्त और भोग्य कालों की संख्या अशुद्ध हो गई है।" पृष्ठ २६ टि० १॥ एवं श्री मीमांसक जी ने लम्बी टि० में अशुद्धि के समाधान में १५ सन्धियों के काल को जोड़ने का सुझाव दिया और लिखा—

"इस प्रकार ७१ चतुर्युग परिमाण के १४ मन्वन्तरों की ९९४ चतुर्युगी संख्या में १५ सन्धियों के छः चतुर्युग काल को जोड़ने से १००० चतुर्युग संख्या ब्राह्मदिन की उपपन्न होती है।" पृष्ठ २६ टि० १।

श्री पं० सुदर्शन देव ने प्राक्कथन में उक्त टिप्पणी की मान्यता का विस्तृत खण्डन किया। उन्होंने लिखा—

"श्री मीमांसक जी ने टिप्पणी देते समय ग्रन्थकार के मन्तव्य की ओर किंचिन्मात्र भी ध्यान नहीं दिया। यदि वे ऋषि के इस प्रकरण का गम्भीरतापूर्वक मनन करते तो ऐसी अशुद्ध टिप्पणी कदापि न देते ऋषि लिखते हैं—

"एते [मनवः] मिलित्वा १४ चतुर्दशैव भवन्ति। तत्रैक-सप्ततिश्चतुर्युगानि ह्येकैकस्य मनोः परिमाणं भवति। ते चैकस्मिन् ब्राह्मदिने १४ चतुर्दश भुक्तभोगा भवन्ति। एकसहस्रं १००० चतुर्युगानि ब्राह्मदिनस्य परिमाणं भवति"। वेदोत्पत्ति विषय०।

अर्थात् मन्वन्तर सब मिलकर १४ ही होते हैं। एक मन्वन्तर का परिमाण ७१ चतुर्युगी है **और एक ब्राह्मदिन में १४ मन्वन्तर भोग काल है।** और ब्राह्मदिन का परिमाण १००० चतुर्युग है।

महर्षि के लेख से यह बात सर्वथा स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने वर्तमान सृष्टि में समझ बूझकर भुक्तकाल और भोगकाल का उल्लेख किया है। जिसका ७१×१४=९९४ चतुर्युग परिमाण है। ऋषि ने उक्त लेख में अपने मन्तव्य को सर्वथा स्पष्ट करके लिख दिया है।

श्री मीमांसक जी ने महर्षि के इस स्पष्ट लेख को भी नहीं समझा। यदि समझा तो अपनी धारणा की पुष्टि में ऋषि के मूलपाठ में कोष्ठक देकर यह पाठ क्यों बढ़ा दिया [ऐसे १४ मन्वन्तर एक ब्राह्मदिन में होते हैं और इतना ही परिमाण ब्राह्मरात्रि का भी होता है।]"

महर्षि स्पष्ट कह रहे हैं कि एक ब्राह्मदिन में १४ मन्वन्तर भोग-काल है उनका समय ४२९४०८०००० वर्ष है और यह भी स्पष्ट लिख दिया है कि १००० चतुर्युग (४३२०००००००) वर्ष ब्राह्मदिन का परिमाण होता है। इसके विरुद्ध श्री मीमांसक जी महर्षि के मूलपाठ में अपनी मान्यता घुसेड़ रहे हैं कि १४ मन्वन्तर एक ब्राह्मदिन का परिमाण होता है। महर्षि ने कहीं भी नहीं लिखा कि १४ मन्वन्तर एक ब्राह्मदिन में होते हैं। सर्वत्र यही लिखा है १००० चतुर्युग ब्राह्मदिन का काल है।" श्री पं० सुदर्शनदेव आचार्य।

रामलाल कपूर ट्रस्ट से प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण पर निम्न टिप्पणी दी हुई है जो संस्करण १९७२ में छपा—

"प्रश्न—जगत् की उत्पत्ति में कितना समय व्यतीत हुआ ?

उत्तर—एक अरब छानवे क्रोड़ कई लाख और कई सहस्र वर्ष जगत् की उत्पत्ति और वेदों के प्रकाश होने में हुए हैं इसका स्पष्ट व्याख्यान मेरी बनाई भूमिका में लिखा है देख लीजिए।" सत्यार्थ-प्रकाश अष्टम समु०।

उक्त पाठ पर निम्न टिप्पणी पृष्ठ ३३५ पर दी हुई है—

१—इस संख्या में मन्वन्तर सन्धियों का काल जोड़ने में छूट गया ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में भी यही मूल है उस पर हमारी टिप्पणी देखें पृष्ठ २८ टि० १।२

इसके पश्चात् सन् १९७५ में उनका द्वितीय संस्करण छपा। जिस पर उक्त टिप्पणी को नहीं दिया गया है। इस संस्करण पर एक और टिप्पणी दे दी कि "[और यह जगत् किस प्रकार बना] यहां कोष्टान्तर्गत पाठ छूट गया प्रतीत होता है।" निवेदन है जो टिप्पणी प्रथम संस्करण पर छप गई और जिन लोगों के पास वही संस्करण है उन को कैसे पता चलेगा कि अगले संस्करण में मीमांसक जी ने उक्त टिप्पणी को निकाल दिया है। इस प्रकार निकालने का पत्रों में कोई विज्ञापन नहीं दिया गया। विज्ञापन भी करते तो वर्तमान समय के कुछ लोगों को पता चलता किन्तु उस संस्करण का तो बहुत काल तक अध्ययन चलेगा। उस भ्रान्त टिप्पणी से जो हानि होगी उसका उपाय क्या होगा ? उत्तर देने की कृपा करें। द्वितीय संस्करण में भी यह स्पष्ट नहीं किया कि इस पाठ पर प्रथम संस्करण में निम्न टिप्पणी थी और वह निम्न कारण से अब समाप्त कर दी गई है। ऐसा करते तो पं० जी के गुरु बनने में तथा टिप्पणियों के प्रति लोगों को अश्रद्धा होती अतः करने योग्य सत्यव्यवहार को भी छुपाया। आचार्य सुदर्शनदेव जी ने मिस्टेक होने के विरुद्ध १९६९ में सविस्तार लिखकर समझाया। किन्तु मीमांसक जी १९७२ तक भी अपनी वही बात कहते रहे। इसको समझ में न आना कहा जाये अथवा दुराग्रह।

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट ने संस्कार विधि पर दी हुई पण्डित जी की लगभग समस्त सात सौ टिप्पणियों का खण्डन किया जिसका आज तक उत्तर नहीं। द्वितीय संस्करण पर जो टिप्पणी दी वह भी निरर्थक गुरु बनने वाली बात है। क्योंकि सत्यार्थप्रकाश में समस्त पाठ प्रश्नोत्तर रूप में ही नहीं हैं, यह प्रश्न जब उत्पन्न होता जब समस्त पाठ प्रश्नों के उत्तर होते। एवं छूटना जब सिद्ध होता जब हस्तलेख में होता। जहां तक हमको पता है प्रूफ कई बार शुधे हैं। एक स्थान पर भी सत्यार्थप्रकाश में १४ अक्षरों का एकत्र छूटना नहीं हुआ है। प्रूफ शोधन के पश्चात् इतना लम्बा वाक्य छूटता भी नहीं है। पं० जी

भी हस्तलेख में इस पाठ का होना नहीं स्वीकार करते। आगे चलकर तृतीय संस्करण में टिप्पणी दे देंगे कि प्रश्न में वेदोत्पत्ति काल नहीं है अतः प्रश्न में छूट गया है। फिर कह देंगे क्योंकि प्रश्न में नहीं है अतः उत्तर में लेखकों ने बढ़ाया है।

इस प्रकार की ऋषि ग्रन्थों में खिलवाड़ करना अनर्थपूर्ण है। और सम्पादक के मिथ्या अभिमान का परिचायक है। इस प्रकार से यदि मीमांसक जी के ग्रन्थों पर टिप्पणी की जाये तो ग्रन्थ के आकार से भी टिप्पणी का आकार बढ़जाये। क्योंकि उनमें तो परस्पर विरोधी वचन भी अत्यधिक हैं जो महर्षि के ग्रन्थों में नहीं हैं।

ऋषि ग्रन्थों में उनके पाठों के विरुद्ध टिप्पणियाँ देना और उनके ग्रन्थों में ही अपनी कपोलकल्पित मान्यताओं को स्थापित करना तथा मूल पाठ को भ्रष्ट करने की अनधिकार चेष्टा करना सर्वथा अनुचित है। श्री मीमांसक जी ने ऋषि के मूल पुस्तकों में पाठ-परिवर्तन, कोष्ठक तथा पाद-टिप्पणियों में ऋषि पाठों के विरुद्ध लेख किए हुए हैं। किन्तु उन ग्रन्थों के सम्पादकीय में संशोधनों के आधार, प्रकार तथा उचितता का कहीं कुछ भी उल्लेख नहीं किया है। यदि इन बातों पर प्रकाश डालते तो स्पष्ट पता चल जाता कि श्री मीमांसक जी का संशोधनों, टिप्पणियों का कोई निश्चित आधार तथा प्रकार न होने से यह कार्य अनुचित है। इसीलिए सम्पादकीय में अपने इस कृत्य पर लेख नहीं लिखते। यदि इस कृत्य को उचित समझते हैं तो सम्पादकीय में उस का प्रतिपादन क्यों नहीं करते ? सृष्टि-संवत् विषयक उक्त पं० सुदर्शन देव जी के लेख को वेदवाणी में प्रकाशन के लिए कहा किन्तु उत्तर मिला कि मैं अपनी कहता रहूँ तुम अपनी कहते रहो। श्री मीमांसक जी का यह व्यवहार उचित नहीं। महर्षि दयानन्द ने तो वादी-प्रतिवादी होकर सत्यासत्य के निर्णय करने को लिखा है।

आर्य जगत् की प्रतिक्रिया

तत्पश्चात् सृष्टि-संवत् विषयक लेख आर्यमर्यादा में छपाया। जिसमें अच्छे प्रकार सिद्ध किया कि ऋषि के लेख में मिस्टेक नहीं है। उस लेख के पश्चात् श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती ने आर्यमर्यादा में ऋषि प्रतिपादित संवत् का प्रयोग जब तक पत्रिका उनके हाथों में रही किया। पश्चात् आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के वर्तमान अधिकारियों ने अब पुनः ऋषि विरुद्ध संवत् का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया है। पुनः श्री पं० सुदर्शनदेव का लेख परोपकारी पत्रिका के फरवरी १९७३ अंक में छपा। उस लेख के प्रतिवाद स्वरूप श्री पं० काशीनाथ शास्त्री के तीन लेख जून, सितम्बर, अक्तूबर १९७३ के परोपकारी में छपे। पं० सुदर्शनदेव जी का पक्ष था कि सन्धिरहित ऋषि प्रतिपादित संवत् शुद्ध है। पं० काशीनाथ ने मयासुर प्रतिपादित सन्धि सहित वाले संवत् का प्रतिपादन किया। श्री पं० काशीनाथ जी से ट्रस्ट का पत्र व्यवहार हुआ। पुनः दोनों पक्षों का निर्णय हुआ कि दोनों के सब लेख, पत्र व्यवहार एकत्र अङ्क में छाप दिये जायें। अतः अप्रैल १९७४ को सृष्टि-संवत् विशेषाङ्क छपा। जितने भी इस विषयक लेख मिले समीक्षा सहित छापे। उस अङ्क में पूर्णरूपेण ऋषि पक्ष को सिद्ध किया गया। विरोधी पक्ष वाले आज तक भी अपने पक्ष को सिद्ध करने में समर्थ नहीं हो सके हैं। प्रायः विद्वान् ऋषि पक्ष को ठीक मानने लगे हैं किन्तु एकता को दृष्टि में रखते हुए सब ही सार्वदेशिक सभा के आदेश की प्रतीक्षा में हैं। सार्वदेशिक सभा से अनेक वार प्रार्थना निर्णय कराने की की गई किन्तु अभी तक इस विषय का निर्णय धर्मार्य सभा में नहीं किया है। सभा अधिकारी यही कहते हैं कि धर्मार्यसभा को निर्णय के लिए कहा हुआ है। किन्तु धर्माधिकारी निर्णय नहीं करते। आशा यही थी कि विशेषाङ्क छपने के पश्चात् समस्या सुलझ जायेगी। और इस विषयक ऋषि की सत्य मान्यता और गम्भीर अध्ययन का निश्चय

सबको हो जायेगा। किन्तु हठ, दुराग्रह और अभिमानवश ऋषि-विरुद्ध संवत् का प्रचलन आर्यसमाज में अभी तक चल रहा है। अतः सृष्टि-संवत् अङ्क पुनः निकाला जा रहा है।

ट्रस्ट ने विशेषाङ्क निकालने के पश्चात् परोपकारिणी सभा से भी प्रार्थना की थी। उन्होंने इस विषय को अपनी विद्वत् सभा में रखा। उनकी सम्मति हुई कि सभा ऋषि प्रतिपादित संवत् का प्रयोग करे। अतः तब से परोपकारिणी सभा ऋषि प्रतिपादित १९६०८५३०७७ वर्ष का प्रयोग कर रही है।

श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक जी से पूछा गया कि मिस्टेक ऋषि दयानन्द से हुई या मनु जी से भी हुई? क्योंकि मनु जी ने भी १५ सन्धियाँ नहीं लिखी हैं। मीमांसक जी ने श्री पं० राजवीर जी से मौखिक यह स्वीकार कर लिया है कि ऋषि दयानन्द के लेख में मिस्टेक नहीं है। उनका मन्तव्य यही है। अर्थात् उनकी मान्यता और मयासुर की मान्यता में भेद है किन्तु हठ और अभिमानवश इस बात को भी आर्यजगत् में कहते नहीं। यह विद्वान् को उचित नहीं है।

सार्वदेशिक पत्रिका में ऋषि-विरुद्ध संवत् के लेख छाप रहे हैं। ऐसे लेख सभा अवश्य छाप देती है पिछले दिनों श्री पं० उदयवीर जी के लेख कई अङ्कों में छपे। श्री पं० राजवीर जी ने पं० उदयवीर जी के लेखों की समीक्षा लिखकर भेजी। किन्तु अनेक बार प्रयत्न करने पर भी वह लेख नहीं छपा। अब श्री पं० वैद्यनाथ जी के इस विषय लेख छप रहे हैं, जो बहुत लम्बे लेख हैं किन्तु उनमें पक्ष तथा युक्ति, प्रमाण कुछ भी नहीं। अपने विपक्ष के युक्ति, प्रमाणों का उपालम्भ तथा अपने पक्ष के साधन के विना कोई पक्ष सिद्ध नहीं होता।

श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक, पं० उदयवीर शास्त्री तथा पं० वैद्यनाथ शास्त्री, इन तीनों का बल इसी बात पर है कि सूर्यसिद्धान्त प्रामाणिक और आर्ष ग्रन्थ है। उसके अनुसार संवत् ही ठीक है। सृष्टिसंवत्

विशेषाङ्क में सूर्यसिद्धान्त प्रामाणिक नहीं, इस विषय का एक लेख पं० राजवीर शास्त्री का छपा था। उसके पश्चात् दयानन्द सन्देश के कई अङ्कों में ब्रह्मचारी वेदव्रत मीमांसक जी के लेख छपे। जिन लेखों में भी सूर्यसिद्धान्त की अप्रामाणिकता का प्रतिपादन किया गया। श्री ब्रह्मचारी जी के लेख विशेषाङ्क के समय तक नहीं प्राप्त हो सके थे। यद्यपि इन लेखों का भी आजतक उक्त विद्वानों तथा अन्य किसी विपक्षी ने उत्तर नहीं दिया है। किन्तु अब यह निश्चय किया गया है कि सूर्यसिद्धान्त की वास्तविकता का विस्तृत उल्लेख एकत्र छापा जाये। अतः इस अङ्क में श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत का लेख छापा गया है। श्री ब्रह्मचारी जी ने ज्योतिष विद्या के प्रसिद्ध विद्वान् से उज्जैन नगरी में जाकर ज्योतिष शास्त्रों का विशेष अध्ययन अनेक वर्षों तक किया है। पाठक उनके लेख का अध्ययन करें। यदि विरोधी पक्ष वालों में साहस है तो उस लेख का उत्तर देकर मयासुर रचित वर्तमान सूर्यसिद्धान्त को प्रामाणिक सिद्ध करें अन्यथा हठ, दुराग्रह, अभिमान को छोड़कर सत्य को ग्रहण करें। तथ्य यह है कि आर्यविद्वानों ने भी इस सूर्यसिद्धान्त का अध्ययन नहीं किया। एवं यह भी सिद्ध होता है कि आर्ष, अनार्ष ग्रन्थों की पहिचान करने में भी वे असमर्थ रहे हैं। अन्यथा पहिचान तो थोड़ा सा पढ़ने से भी हो जाती। महर्षि दयानन्द तो आर्ष, अनार्ष ग्रन्थों के जानने में अति निपुण थे। वे कदापि इस ग्रन्थ को आर्ष नहीं मान सकते थे। उन्होंने इस ग्रन्थ को आर्ष माना ही नहीं यदि मानते तो संवत् विषयक इस ग्रन्थ की मान्यता का अवश्य उल्लेख करते। उन्होंने तो इस ग्रन्थ का एक प्रमाण भी नहीं दिया, उलटा इसकी संवत् विषयक तथा ज्योतिष-सिद्धान्त विषयक और अनेक प्रकार की अन्य मान्यताओं का खण्डन किया है।

क्या दोनों संवत् ठीक हैं ?

श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री २० जून १९७६ के सार्वदेशिक पत्रिका में लिखते हैं—

"आर्यसमाज से इतर समाज में संदेह का कोई अवसर नहीं है। वे समाज असन्दिग्ध रूप से एक अरब सत्तानवें करोड़ उनत्तीस लाख आदि संवत् को स्वीकार करते हैं। उस संवत् की मान्यता केवल समाज द्वारा स्वीकार करने से ही नहीं है, प्रत्युत समस्त तद्विषयक प्राचीन, नवीन वाङ्मय (ज्योतिषशास्त्र धर्मशास्त्र आदि) उसका प्रस्तोता व पोषक है। परन्तु आर्यसमाज के लिये यह एक समस्या हो गई है, क्योंकि आर्यसमाज पूर्णरूप में न उस प्राचीन संस्कृत वाङ्मय से नकार कर सकता है, और न उसे पकड़ने का ही साहस कर पाता है। कारण कि—महर्षि दयानन्द का लेख उसके लिए सर्वथा निर्भ्रान्त पत्थर की लकीर है।......यह निश्चित है महर्षि ने अपनी रचनाओं में जैसे १९६०८५३०७७ संवत् का उल्लेख व विवरण प्रस्तुत किया है वैसे द्वितीय संवत् का कहीं उल्लेख किया हो दृष्टि में नहीं आया।...... महर्षि के मस्तिष्क में यह स्पष्ट था, कि इन संवतों में कोई टकराव नहीं है।......महर्षि ने लम्बे संदर्भ में उस संकल्प पाठ का संकेत किया है, जो भारत में प्राचीन काल से किसी कार्य का प्रारम्भ करने पर पढ़ा जाता है। उस में सृष्टि-संवत् आदि का निर्देश रहता है। इस संदर्भ से महर्षि ने उस प्राचीन परम्परा को मान्यता प्रदान की है। उक्त परम्परा में जिस सृष्टि संवत् का उच्चारण किया जाता है वह एक अरब सत्तानवें करोड़ वाला सृष्टि संवत् है। इसका निषेध महर्षि ने कहीं नहीं किया।......महर्षि ने जिस संवत् का विवरण प्रस्तुत किया है वह वेदोत्पत्ति व मानव-सृष्टि का है और जो संवत् चिरकाल से भारत में प्रचलित है, वह उस काल का निर्देश करता है, जब मूलतत्त्वों में सर्गोन्मुखक्षोभ सर्वप्रथम प्रारम्भ हुआ।......

फलतः इन संवत्सरों में परस्पर कोई विरोध नहीं है। यह दो अलग-अलग घटनाओं के काल हैं। एक वेदोत्पत्ति का, तथा दूसरा मूलतत्त्वों में सर्वप्रथम सर्गोन्मुखक्षोभ का। इसलिये इनमें टकराव कोई नहीं; अपने-अपने स्थान पर दोनों ठीक हैं।"

श्री पं० उदयवीर शास्त्री

श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री के लेख का सारांश निम्न है—

१. आर्यसमाज से इतर समाज में इस विषयक संदेह नहीं है।

२. समस्त प्राचीन-नवीन वाङ्मय, ज्योतिष शास्त्र, धर्मशास्त्र आदि उसका प्रस्तोता व पोषक हैं।

३. संकल्पपाठ में एक अरब सत्तानवें संवत् है जिसको महर्षि ने भी प्रस्तुत किया है।

४. महर्षि ने सर्वत्र एक अरब छयानवें करोड़ संवत् लिखा है अतः आर्यसमाज के लिये यह एक समस्या है। जिसका समाधान यह है कि एक संवत् वेदोत्पत्ति तथा मानवोत्पत्ति का है और दूसरा मूलतत्त्वों में सर्वप्रथम सर्गोन्मुखक्षोभ का है। इसलिये इन दोनों संवतों में परस्पर कोई टकराव नहीं है। अब क्रमशः इनका उत्तर दिया जाता है।

१. यह विचार गलत है क्योंकि प्रसिद्ध ज्योतिषरत्न कार्यालय फरूखनगर जि० गुड़गावां से जो पंचाङ्ग २०३३ तथा २०३४ का निकला है उसमें मन्वन्तर आर्यसंवत् १९६०८५३०७६ ही लिखा हैं दूसरा बिलकुल भी नहीं। अन्य में भी ऐसा सुना है किन्तु देख नहीं सका। इतर समाज तो ऋषि की इस बात को ठीक मानने लग गई किन्तु आर्य समाज का संगठन अभी ऋषि-विरुद्ध ही है। एवं अन्य पत्रों में एक अरब सत्तानवें कहीं भी देखने को नहीं मिलता किन्तु १९५५८८५०७८ वर्ष मिलता है। ज्ञात होता है उसको वे १९७२९४९०७८ में से सूर्यसिद्धान्तानुसार १७०६४००० वर्ष चराचर के बनने वाले काल

को कम करके निकालते हैं। किन्तु १९७२९४९०७८ वर्ष को लिखते बिलकुल नहीं। अतः आपके अनुसार तो इतर समाज कोई भी नहीं मानता।

२. यह विचार भी गलत है। क्योंकि १९७ वाला संवत् १५ सन्धि काल को जोड़ने से बनता है। किन्तु अभी नवभारत १९-११-७६ में हरियाणा सरकार के एक विशिष्ट अधिकारी श्री एस० एल० धनी ने एक लेख में लिखा है कि आर्यभट्ट (ज्योतिष का मयासुर से भी पहिला ग्रन्थ) के अनुसार लगभग ३० करोड़ ८६ लाख वर्ष एक मन्वन्तर में होते हैं। मन्वन्तरों की इसी प्रकार की कहानी पुराणों में भी व्याख्यात है। उक्त बात लिखी है जो सूर्यसिद्धान्त के विरुद्ध है। क्योंकि आर्यभट्ट और पुराण १४ कल्पों के बराबर-बराबर भाग करते हैं, सन्धि का कथन बिलकुल नहीं करते। जिससे दोनों हिसाबों में अन्तर है। दूसरी बात यह है कि इस विषयक विचार का प्राचीन शास्त्र तथा धर्मशास्त्र में केवल मनुस्मृति है, जिसमें सन्धि का कथन नहीं।

३. यह बात पूर्णतः गलत है क्योंकि संकल्प पाठ से तो एक अरब छयानवें करोड़ वर्ष ही बनता है। सन्धिकाल जोड़ने का उसमें कहीं कथन नहीं। आपके अनुसार यदि होता तो फिर स्पष्ट ही था कि महर्षि से वह जोड़ना रह गया, मिस्टेक हो गई, फिर आपको इतना लम्बा लेख तीन चार पत्रिकाओं में लिखना ही नहीं चाहिये था। केवल संकल्प पाठ मात्र लिखना आपकी मान्यता को सिद्ध कर देता किन्तु आपको पता था कि यह मेरी काल्पनिक बात है। संकल्प पाठ में ऐसा नहीं है। अतः यह महर्षि पर आपका आक्षेप ही माना जायेगा जो निराधार और गलत है।

४. यह मान्यता भी सर्वथा काल्पनिक है। आप एक स्थान में सर्वत्र महर्षि की मान्यता १ अरब ९६ करोड़ बताते हैं और दूसरी

जगह महर्षि की मान्यता से १ अरब ९७ सिद्ध करके महर्षि का परस्पर विरोध प्रदर्शित करते हैं। किन्तु विरोध आपके लेख में है। क्योंकि "सर्वत्र" शब्द का प्रयोग करके पुनः समन्वय का काल्पनिक मार्ग बताते हैं। और उस काल्पनिकता में ऋषि को भी गलत रूप में प्रस्तुत करते हैं। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है इतर लोग प्रायः १९५५८८५०७७ वर्ष का प्रयोग करते हैं। आपके अनुसार समन्वय कोई भी नहीं करता। करे भी कैसे सूर्यसिद्धान्त से होता ही नहीं। सूर्य सिद्धान्त से ऋषि-कथित संवत् निकलना असम्भव है। जिस समन्वय के लिये आपने पूरे लेख में प्रयत्न किया है कि वह यदि हो जाता तो समस्या अब तक रहती ही नहीं। दयानन्द सन्देश के सृष्टि-संवत् विशेषाङ्क जो कि १९७४ में छपा था और आपको भी भेजा गया था, प्रतीत होता है, आपने उसका भी अपने लेख लिखने से पूर्व नहीं अध्ययन नहीं किया अन्यथा उसमें तो समन्वय-विषयक एक प्रकरण ही अलग है और प्रारम्भ में सम्पादकीय लेख में पूरा चार्ट बनाकर समझाया गया है। उसका पृष्ठ १४-१५ पर उल्लेख है।

"कुछ विद्वानों का विचार है कि सृष्टि संवत् दोनों ठीक हैं, उनमें एक मानव संवत् और दूसरा सृष्टि संवत् है। यह मान्यता पूर्णतः निराधार है, क्योंकि पहला संवत् मानव संवत् ठीक है किन्तु दूसरा संवत् ठीक नहीं। क्योंकि जड़ सृष्टि की रचना में महर्षि की मान्यता के अनुसार छः चतुर्युगी का समय लगा है। उसको जोड़ने पर सृष्टि संवत् १९८६७७३०७४ बनता है १९७२९४९०७४ कदापि नहीं। इस मान्यता वालों का तात्पर्यार्थ यह होता है कि सन्धि रहित काल मानव तथा वेद-संवत् और सन्धि सहित काल सृष्टि-संवत् है। और सन्धि काल सृष्टि उत्पत्ति में लगता है इससे उनका सृष्टि-उत्पत्ति में लगने वाला काल प्रति मन्वन्तर में भिन्न-भिन्न होगा अन्यथा एक हजार चतुर्युगी पूरी न होगी। किन्तु इस बात को तो स्वयं इस पक्ष वाले भी स्वीकृत

नहीं कर सकते (क्योंकि सन्धि काल तो प्रति मन्वन्तर आते रहेंगे और सृष्टि उत्पत्ति पहले हो चुकी। अतः प्रत्येक मन्वन्तरों के मनुष्य इस हिसाब से सृष्टि रचना में लगा कर भिन्न-भिन्न मानेंगे जिसको कोई भी बुद्धिमान् कैसे स्वीकार करेगा।

प्रथम मन्वन्तर वाले				१७२८००० वर्ष
द्वितीय	,,	,,		३४५६००० ,,
तृतीय	,,	,,		५१८४००० ,,
चतुर्थ	,,	,,		६९१२००० ,,
पञ्चम	,,	,,		८६४०००० ,,
षष्ठ	,,	,,		१०३६८००० ,,
सप्तम	,,	,,	अर्थात् इस समय	१२०९६००० ,,
अष्टम	,,	,,		१३८२४००० ,,
नवम	,,	,,		१५५५२००० ,,
दशम	,,	,,		१७२८०००० ,,
एकादश	,,	,,		१९००८००० ,,
द्वादश	,,	,,		२०७३६००० ,,
त्रयोदश	,,	,,		२२४६४००० ,,
चतुर्दश	,,	,,		२४१९२००० ,,

इस प्रकार १४ मन्वन्तर के पश्चात् प्रलय हो जायेगा और १५वीं सन्धिकाल को मानव देख ही नहीं सकेगा। अतः दोनों सृष्टि संवतों में समन्वय कदापि सम्भव नहीं।" सृष्टि संवत् विशेषाङ्क पृ० १४-१५

अतः दोनों संवतों में कोई टकराव नहीं। श्री पं० जी का यह कथन परीक्षा करने पर निस्सार तथा काल्पनिक ही सिद्ध होता है।

तीन चतुर्युगी पहले, तीन पश्चात् मानना ठीक नहीं

तीन चतुर्युगी प्रारम्भ में और तीन अन्त में प्रलय में जोड़ने का भी कुछ लोगों का मन्तव्य है। यद्यपि इस मान्यता से ऋषि के माने

मानव और वेद-संवत् में कोई अन्तर नहीं आता, किन्तु यह विचार भी महर्षि के विरुद्ध ही है क्योंकि महर्षि ने लिखा है—

"जब पर्यन्त हजार चतुर्युगी व्यतीत न हो चुकेंगे तब पर्यन्त ईश्वरोक्त वेद का पुस्तक यह जगत् और हम सब मनुष्य लोग भी ईश्वर के अनुग्रह से सदा वर्तमान रहेंगे।"

(ऋ० भा० भू० वेदोत्पत्ति विषय का उपसंहार वचन)

निवेदन है इससे स्पष्ट है ऋषि तीन चतुर्युगी काल की प्रलय में गणना नहीं करते। यह बात ऋषि की उचित ही है। क्योंकि सृष्टि रचना में लगे काल की सृष्टि में और प्रलय में लगे काल की प्रलय में ही गणना करना ठीक है।

श्री पं० वैद्यनाथ जी शास्त्री ने पहले अपने ग्रन्थों में तीन चतुर्युगी काल प्रारम्भ में और तीन प्रलय में गणना की थी। और अपनी यह गलत मान्यता वेद-प्रमाण देकर वेद के मत्थे लगाई थी, जिसका पहले विशेषाङ्क में प्रतीकार किया गया था। जिसका उत्तर श्री आचार्य वैद्यनाथ जी आज तक नहीं दे सके हैं। क्या कोई भी विद्वान् अपनी मिथ्या मान्यता को स्वतः प्रमाण वेदों से सिद्ध कर सकता है? यदि किया जा सकता है, तो पुराणादि के रचयिताओं ने व्यासादि के नाम से जो कुछ भी लिखा है, उन्होंने क्या पाप कर दिया था? महर्षि दयानन्द ने केवल वेदों का आश्रय लेकर ही समस्त मिथ्या मान्यताओं का खण्डन किया और उनके अनुयायी अपनी ऋषि-विरुद्ध, शास्त्र-विरुद्ध, युक्ति-विरुद्ध तथा उनके लेखों से भी विरुद्ध मान्यता को वेदों से सिद्ध करने लगे हैं। यह कितना महान् आश्चर्य तथा खेदपूर्ण बात है?

यदि आचार्य वैद्यनाथ जी अपनी पहली मान्यता को असत्य अनुभव करने लगे हैं, इसीलिए अब उसे छोड़ बैठे हैं, तो उन्हें इसका प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। क्योंकि उन्होंने ऐसा करके महर्षि से ही विद्रोह नहीं

किया, अपितु भगवान् की पवित्र वाणी वेद के साथ भी खिलवाड़ किया है ? उन्हें आर्य जगत् को इसका कारण भी बताना पड़ेगा। जिससे दूसरे अध-कचरे वेदार्थ से अनभिज्ञ व्यक्तियों को भी आपकी भ्रान्ति पूर्ण शैलि से शिक्षा मिल सके। श्री आचार्य जी ने सम्पूर्ण सामवेद का भाष्य किया है। उन्होंने वहां भी ऐसे भ्रान्तिपूर्ण अर्थ किए होंगे। यह वेदार्थ के प्रति कितना अनर्थ तथा विद्रोह है। श्री आचार्य जी की वेदार्थ की त्रिविध-प्रक्रिया का प्रभाव जहां विद्वानों के समक्ष आयेगा, वहाँ 'घटाटोपो भयङ्करः' के अनुसार उनकी मिथ्या विद्वत्ता का भी बोध होगा। इस त्रिविध प्रक्रिया का प्रभाव प्रत्येक मन्त्र पर पड़ता है, जो कि आज तक कोई भी विद्वान् प्रत्येक मन्त्र के तीन या चार अर्थ सिद्ध नहीं कर सका है। हमारा ट्रस्ट लगातार चार वर्षों से त्रिविध-प्रक्रिया के विरुद्ध लिख रहा है, परन्तु श्री आचार्य जी मौन रहकर ही मन में तो सम्भव है अपनी गलती का प्रायश्चित्त कर रहे हैं। क्योंकि वे इस त्रिविध-प्रक्रिया को आज तक सिद्ध नहीं कर सके हैं। और इस मिथ्या शैली का आश्रय करके कोई भी वेद-भाष्य-कार कदापि शुद्ध वेदार्थ नहीं कर सकता।

अब उनके दो लेख सार्वदेशिक पत्रिका में आ चुके हैं। उनमें तो उनकी यह मान्यता अभी आई नहीं है। किन्तु अभी लेखमाला समाप्त नहीं हुई है। अभी तक के लेख से तो वे मयासुर के सन्धिकाल का प्रतिपादन कर रहे हैं जो कि इस तीन-तीन चतुर्युगी काल की मान्यता का विरोधी है क्योंकि उसमें तो स्पष्ट ही चराचर के बनने का काल भिन्न लिखा है तथा बनने का काल तीन चतुर्युगी मानने पर सन्धि-काल उत्पन्न ही नहीं होता। उनका पूरा लेख आने पर ही मालूम होगा कि वह अपनी पूर्व मान्यता को छोड़ते हैं या नहीं जो कि उन्होंने वेदों से सिद्ध की थी। अगर पूर्व मान्यता को छोड़ते नहीं, तो इन असत्य व परस्पर विरोधी मान्यताओं को किस प्रकार अपनी विद्या के बल

पर सत्य सिद्ध कर सकते है ? उनके लेखों पर विचार आगे श्री पं० राजवीर जी करेंगे, तब तक आशा है उनका पूरा लेख भी मिल जायेगा ।

उपसंहार

मेरा विचार है कि ऋषि ने इस विषय की समस्या को बहुत गम्भीरता से अध्ययन कर सरलता से प्रतिपादन किया है ।

जिसको विचार करने पर प्रत्येक को ही नतमस्तक होना पड़ेगा । मेरी दृढ़ धारणा है कि महर्षि प्रतिपादित संवत् के बदलने में आर्यों से भूल हुई है । भूल को स्वीकार कर लेना ही आर्यत्व है । आर्य समाज में ऋषि विरुद्ध संवत् का प्रयोग अनुचित है । अत: आर्यों को हठ, दुराग्रह और अभिमान का त्याग करके आर्यसमाज के चतुर्थ नियम के अनुसार सत्य का ग्रहण करना चाहिये । महर्षि ने तो लिखा है कि शास्त्रार्थ में विजय सदा सत्य की ही होती है । अत: केवल विद्या के बल से असत्य को कदापि सत्य सिद्ध नहीं किया जा सकता । मेरे इस लेख को पढ़कर सम्भव है कुछ लोगों के मन में ऐसा भी विचार पैदा हो कि श्री आचार्य वैद्यनाथ आदि बहुत बड़े विद्वान् हैं, उनकी मान्यता का प्रतिवाद करना तुम्हें उचित नहीं, ऐसे भद्र पुरुषों से मेरा नम्र निवेदन यही है कि मैंने जो कुछ भी लिखा है वह महर्षि दयानन्द की मान्यता के अनुसार है । मेरी अपनी मान्यता नहीं है । महर्षि दयानन्द के समक्ष उक्त विद्वानों की विद्या नगण्य तथा अल्प है । यदि ये विद्वान् महर्षि दयानन्द की मान्यता का प्रतिवाद अपनी तुच्छ व दुराग्रह पूर्ण मान्यता के लिए करने का साहस करते हैं, तो कौन ऋषि-भक्त होगा जो इन ऋषि द्रोहियों की बातों से क्षुब्ध न होगा । महर्षि की सत्य तथा शास्त्र-सम्मत मान्यता का खण्डन करने का दम्भ महर्षि दयानन्द भवन में बैठकर करें, यह कैसे सह्य हो सकता है ?

वैदिक पुस्तकालय मुम्बई
आचार्य धर्मधर आर्य
सम्पर्क - 9029421718.

ओ३म्

मयासुर रचित आधुनिक सूर्यसिद्धान्त की अप्रामाणिकता

ले० ब्र० वेदव्रत मीमांसक; ज्यौतिषशास्त्रज्ञ, गुरुकुल सिंहपुरा, जि० रोहतक

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में पठनपाठन विधि के अन्तर्गत वेदाङ्गभूत ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन के क्रम में लिखा है—

"दो वर्ष में ज्योतिषशास्त्र सूर्यसिद्धान्तादि जिसमें बीजगणित, अङ्क, भूगोल और भूगर्भ विद्या है इसको यथावत् सीखें। तत्पश्चात् सब प्रकार की हस्तक्रिया, यन्त्रकला आदि को सीखें, परन्तु जितने ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्त आदि के फल के विधायक ग्रन्थ हैं उनको झूठ समझ के कभी न पढ़ें और पढ़ावें"

संस्कारविधि में वेदारम्भ प्रकरण में लिखा है—

"एक वर्ष में सूर्यसिद्धान्तादि में से कोई एक सिद्धान्त से गणित विद्या, जिसमें बीजगणित, रेखागणित और पाटीगणित जिसको अङ्कगणित भी कहते हैं, पढ़ें और पढ़ावें"।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्य विषय में लिखा है—
"ज्योतिषं वसिष्ठाद्यृष्युक्तं रेखाबीजगणितमयं चेति वेदानां षडङ्गानि सन्ति"······वसिष्ठमुनि आदिकृत ज्योतिष सूर्यसिद्धान्तादि"

स० प्र० के द्वादश समुल्लास में लिखते हैं—

"वेदमतानुयायी सूर्यसिद्धान्तादि ज्योतिषग्रन्थों के अध्ययन से ठीक ठीक भूगोल खगोल विदित हुए।"

ऋ० भा० भू० वेदोत्पत्ति विषय में लिखा है—

"एकं दश शतञ्चैव सहस्रमयुतं तथा।
लक्षं च नियुतं चैव कोटिरर्बुदमेव च ॥ १ ॥
वृन्दः खर्वो निखर्वश्च शंखः पद्मं च सागरः।
अन्त्यं मध्यं परार्द्धं च दशवृद्धया यथाक्रमम् ॥ २ ॥ इति सूर्य-सिद्धान्तादिषु संख्यायते।"

"एक, दश, शत, हजार, दशहजार, लाख, नियुत, करोड, अर्बुद, वृन्द, खर्व, निखर्व, शंख, पद्म, सागर, अन्त्य, मध्य और परार्द्ध और दश २ गुणा बढ़ाकर इसी गणित से सूर्यसिद्धान्त आदि ज्योतिष ग्रन्थों में गिनती की है।"

ज्योतिष के सम्बन्ध में महर्षि के वचनों का सारांश—

१. सूर्यसिद्धान्त वसिष्ठादि ऋषिकृत है।

२. वह वेदमतानुयायी है।

३. उसमें गणितविद्या अर्थात् अङ्कगणित, वीजगणित और रेखा-गणित, भूगोल, खगोल और भूगर्भविद्या है।

४. उसमें सब प्रकार की हस्तक्रिया और यन्त्रकला है।

५. एकं, दश, शतं आदि श्लोक सूर्यसिद्धान्त में हैं।

६. ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्त आदि के फल-विधायक ग्रन्थ झूठे हैं।

७. सूर्यसिद्धान्त में ग्रह आदि का फलविधान तथा वेद-विरुद्ध बातें नहीं हैं।

महर्षि ने पठनपाठन में सूर्यसिद्धान्त को स्थान दिया है। आर्य समाज में ज्योतिष पढ़ने पढ़ाने की परिपाटी अभी प्रारम्भ नहीं हुई।

इस कारण ज्योतिष सम्बन्धी ऋषि विचारों पर अभी विशेष विचार नहीं किया जा रहा है। सूर्यसिद्धान्त नामक ग्रन्थ ज्योतिष जगत् में प्रचलित है। सहसा यह समझा जाता है कि यह वही ग्रन्थ है जिसका उल्लेख महर्षि ने किया है। नाम साम्य है इसमें सन्देह नहीं है। किन्तु वर्तमान सूर्यसिद्धान्त को आद्योपान्त पढ़ें, तो यह सुस्पष्ट हो जायेगा कि यह महर्षि का अभिप्रेत नहीं है। क्योंकि—

१. यह आर्ष नहीं है। (उपशीर्षक १, २, ३, ४, ५, ८, ९, २५, ३१, ३२, ३८, ३९ पढ़ें)

२. इसमें वेदों तथा शास्त्रों के विरुद्ध सृष्टिक्रम का उल्लेख है। (२, ३, ११, १२, १७, २१, २२, २६, २८)

३. इसमें असंभव बातों का उल्लेख है। (२, ३, ५, ६, १२, १९, २१, २२, २३, २८, ३०, ३२, ३४)

४. सूर्य को चेतन माना गया है। (१, २, ३, ४)

५. पौराणिक देवी-देवताओं का वर्णन है। (१, ६, २०, २८, २९, ३७)

६. सूर्य का पृथिवी के चारों ओर घूमना माना गया है। (११)

७. पृथिवी को स्थिर तथा सम्पूर्ण विश्व के मध्य में माना है। (११)

८. चन्द्र को जलमय माना है। (१७)

९. चन्द्र पर मृतपितरों को माना है। (३०)

१०. मृतक श्राद्ध का प्रतिपादन किया है। (३१)

११. भूगोल के विरुद्ध वर्णन है। (११, २८)

१२. खगोल के विरुद्ध उल्लेख है। (११, २८)

१३. भूगर्भ विद्या के विरुद्ध लिखा है। (१२)

१४. सृष्टि को प्रवाह से सादि माना है। (२४)

१५. ग्रह, नक्षत्र, तथा गुह्यकों की पूजा का विधान किया है। (२९)

१६. पाप नाश का उल्लेख है। (५, २६)
१७. इसमें परस्पर विरुद्ध लेख हैं। (७, २३, २४)
१८. महर्षि दयानन्द निर्दिष्ट विद्याएं नहीं हैं। (१, १०, १३, १४)
१९. इसमें ऋषि के अभिमत सिद्धान्तों के विरुद्ध सिद्धान्त हैं। (२-७; ११, १२, १४, १७, १६, २१-३८)
२०. इसके कर्ता के सम्बन्ध में मतभेद हैं। (८, ९)
२१. सूर्यसिद्धान्त एक नहीं है कई हैं। (७, १४-१६)

१—वर्तमान सूर्य सिद्धान्त—अनार्ष है, आर्ष नहीं है। वसिष्ठ ऋषिकृत नहीं है। इससे महर्षि का अभिप्रेत सूर्यसिद्धान्त यह नहीं है। प्रचलित में यह पढ़ते वा सुनते हैं कि यह सूर्योक्त है। सूर्य कौन है, इसका कर्त्ता कौन है, इसके सम्बन्ध में प्रथम इस ग्रन्थ के आश्रय से (अन्तःसाक्ष्य से) ही विचार करेंगे।

अल्पावशिष्टे तु कृते मयोनाममहासुरः।
रहस्यं परमं पुण्यं जिज्ञासुर्ज्ञानमुत्तमम् ॥२॥
वेदांगमग्र्यमखिलं ज्योतिषां गतिकारणम्।
आराधयन् विवस्वन्तं तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥३॥
तोषितस्तपसा तेन प्रीतस्तस्मै वरार्थिने।
ग्रहाणां चरितं प्रादान्मयाय सविता स्वयम् ॥४॥
विदितस्ते मया भावस्तोषितस्तपसा ह्यलम्।
दद्यां कालाश्रयं ज्ञानं ग्रहाणां चरितं महत् ॥५॥
न मे तेजः सहः कश्चिदाख्यातुं नास्ति मे क्षणः।
तस्मात् त्वं स्वां पुरीं गच्छ तत्र ज्ञानं ददामि ते ॥६॥
रोमके नगरे ब्रह्मशापान्म्लेच्छावतारधृक्।
मदंशः पुरुषोऽयं ते निश्शेषं कथयिष्यति ॥७॥
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः समादिश्यांशमात्मनः।
स पुमान्मयमाहेदं प्रणतं प्राञ्जलिस्थितम् ॥७॥

शृणुष्वैकमनाः पूर्वं यदुक्तं ज्ञानमुत्तमम् ।
युगे युगे महर्षीणां स्वयमेव विवस्वता ॥८॥
शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः ।
युगानां परिवर्तेन कालभेदोऽत्र केवलम् ॥९॥
एतत्ते परमाख्यातं रहस्यं परमाद्भुतम् ।
ब्रह्मैतत् परमं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१४।२२॥
दिव्यञ्चार्क्षं ग्रहाणां च दर्शितं ज्ञानमुत्तमम् ।
विज्ञायार्कादिलोकेषु स्थानं प्राप्नोति शाश्वतम् ॥२३॥
इत्युक्त्वा मयमामन्त्र्य सम्यक् तेनाभिपूजितः ।
दिवमाचक्रमेऽर्कांशः प्रविवेश स्वमण्डलम् ॥२४॥

अर्थ—सत्ययुग के कुछ शेष रहने पर मयनामक महासुर ने सब वेदाङ्गों में श्रेष्ठ सारे ज्योतिष्कपिण्डों की गतियों के कारण को जानने वाले परमपवित्र और रहस्यमय उत्तम ज्ञान को जानने की इच्छा से कठिन तप करके सूर्य की आराधना की। उसकी तपस्या से सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर वर चाहने वाले मय को स्वयं सूर्य ने ज्योतिःशास्त्र का उपदेश किया। सूर्य ने कहा कि तेरा भाव मुझे विदित हो गया है और तेरे तप से मैं सन्तुष्ट हूँ। मैं तुझे ग्रहों के चरित का उपदेश करता हूँ जिससे समय का ठीक-ठीक ज्ञान हो सकता है। परन्तु मेरा तेज कोई सह नहीं सकता और उपदेश देने के लिए मेरे पास समय भी नहीं है। इसलिए यह पुरुष जो मेरा अंश है तुझे भली-भांति उपदेश देगा (इसलिए तू अपने नगर को जा, ब्रह्मशाप के कारण मैं म्लेच्छावतार धारण कर वहां रोमक नगर में तुझे ज्ञान दूंगा।) यह कहकर सूर्य अपने अंश को आदेश देकर अन्तर्हित हुआ। अञ्जलि बांधकर स्थित मय से इस शास्त्र को कहा। एकाग्र मन होकर सुनो जिसको स्वयं सूर्य ने समय-समय पर महर्षियों से कहा था। यह वही शास्त्र है जिसको स्वयं सूर्य ने कहा। युगों के परिवर्तन से इसमें केवल काल का भेद है।

तुझे यह रहस्यमय अद्भुत (शास्त्र) बतलाया। यह ब्रह्म का उत्कृष्ट रूप है। सब पापों का नाश करने वाला है। आकाशीय नक्षत्र और ग्रहों का ज्ञान बतलाया इसको जानकर सूर्यादि लोकों में शाश्वत स्थान को प्राप्त कर लेता है। यह कहकर सूर्यांश पुरुष मय से पूजित होकर द्युलोक को प्राप्त हुआ और अपने मण्डल में प्रविष्ट हुआ।

समीक्षा १—मयनामक असुर ने कृत युग के कुछ वर्ष शेष रहने पर सूर्य की आराधना की। प्रथमे ग्रासे मक्षिका पातः की उक्ति यहां चरितार्थ हुई। यहीं से ज्ञान-विज्ञान विरुद्ध कल्पना प्रारम्भ हुई। ग्रन्थकर्त्ता करिष्यमाण ग्रन्थ को अति प्राचीन सिद्ध करने के लिए यह प्रयास कर रहा है। इसमें सफलता नहीं मिली। इस ग्रन्थ के १२वें अध्याय में सृष्टि की उत्पत्ति के प्रसङ्ग में वासुदेव, संकर्षण और अनिरुद्ध आदि नाम आए हैं। कृत तथा त्रेता में वासुदेव, संकर्षण, अनिरुद्ध नहीं थे अपितु कलि के आरम्भ में थे। सूर्यसिद्धान्त के निर्माता को इतिहास का ज्ञान नहीं था अथवा वासुदेव की भक्ति में इतना मुग्ध हुआ कि इतिहास को भुलाकर उसी को सृष्टि का कर्त्ता मान लिया। वासुदेव आदि महाभारत काल के थे, त्रेता के नहीं। अपने ग्रन्थ को कृतयुग का सिद्ध करना चाहते थे पर सिद्ध कर गए पौराणिक मध्यकालीन का, जब कि श्री कृष्ण को परमेश्वर मानना आरम्भ हो चुका था। अतः यह स्पष्ट हुआ कि यह ग्रन्थ कृतयुग का तो क्या महाभारत कालीन भी नहीं है। इसकी रचना तब हुई जब कि श्रीकृष्ण को भगवान् का अवतार माना जाने लगा था।

२—**आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में सृष्टिक्रम के विरुद्ध बातें हैं**—स्वयं सूर्य ने मय से वार्तालाप किया और कालाश्रित शास्त्र को मय को स्वयं प्रदान किया। महर्षि ने ८वें समुल्लास में सूर्य को पृथिवी से लाखों गुना बड़ा लोक कहा है। किन्तु सूर्यसिद्धान्त में स्पष्ट लिखा है कि सूर्य ने मय से बात की। पृथिवी से लगभग १३ लाख गुना बड़े सूर्य का

पृथिवी पर रहने वाले एक मनुष्य के पास आना और बात करना पृथिवी का सुरक्षित रहना, मय का जलकर भस्म न होना, सृष्टिक्रम विरुद्ध कल्पना है। जब सूर्य मय के पास आया तब सूर्य के चारों ओर घूमने वाले सहस्रों ग्रह कहां रहे ? अतः यह लेख पुराणों के सदृश है।

३—आधुनिक सूर्य सिद्धान्त में सूर्य को चेतन माना गया है— महर्षि ने सूर्य को चेतन नहीं माना किन्तु जड़ कहा है। "कहिये ज्योतिर्वित् ! जैसी यह पृथिवी जड़ है वैसे ही सूर्यादि लोक हैं। वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते। क्या ये चेतन हैं जो क्रोधित होके दुःख और शान्त होके सुख दे सके ?" स० प्र०. द्वितीय समुल्लास।

४—आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में जड़ पदार्थ की आराधना लिखी है—सूर्यांश पुरुष का क्या अर्थ है ? चेतन है वा जड़ ? सूर्य जड़ पदार्थ है जड़ से उत्पन्न पदार्थ भी जड़ ही होगा तो चैतन्य उसमें कहां से आया ? यदि चेतन से चेतन मानो तो सूर्य के टुकड़े हुए। चेतन को अनित्य मानना पड़ेगा। मय चेतन पुरुष था। उसने सूर्य की उपासना की। सूर्य जड़ है, जड़ सूर्य की चेतन पुरुष ने आराधना की। क्या ज्ञान प्राप्ति के लिए कोई विद्वान् जड़ की आराधना कर सकता है ? यदि कर सकता है तो वह अविद्वान् होगा। यदि विद्वान् भी हो और जड़ की आराधना भी करे तो आज के पौराणिक पाषाण पूजकों में और मय में क्या भेद होगा ? क्या जड़ में ज्ञान (गुण) हो सकता है ? यदि होता है तो चेतन का क्या लक्षण होगा और जड़-चेतन का क्या भेद होगा ? जड़ में ज्ञान का होना किस वेद में वा शास्त्र में लिखा है ? किस ऋषि ने माना है ? यदि ज्ञान नहीं होता है तो ज्ञान के लिए जड़ की आराधना करनी बुद्धिमत्ता है अथवा बुद्धिहीनता ? यदि मय ने की भी हो तो उसको चेतन नहीं कहा जा सकता। जड़ मानना पड़ेगा। सूर्य को महर्षि ने जड़ ही लिखा है कोई भी बुद्धिमान् सूर्य को चेतन नहीं कह सकता। अतः मय बुद्धिमान् नहीं हो सकता। पौरा-

णिक आज भी सूर्य को चेतन मानते हैं। इन श्लोकों का रचनाकाल जड़पूजा प्रचार का रहा है। जड़पूजा पौराणिक घड़न्त है, वैदिक नहीं।

५—आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में पापों की क्षमा मानी है—पापों की क्षमा का भी इसमें वर्णन है। "पाप क्षमा करने की बात जिस पुस्तक में हो, वह न ईश्वर और किसी विद्वान् का बनाया है किन्तु पापवर्द्धक है" यह महर्षि ने १४वें समुल्लास में लिखा है। इसलिए यह ग्रन्थ महर्षि का अभिप्रेत नहीं हो सकता।

प्रश्न—'पापप्रणाशनम्' का अर्थ किए हुए पापों की क्षमा नहीं अपितु आगे के लिए पापों का न करना है ?

उत्तर—यह आपका अपना विचार है। पुस्तक में ऐसा नहीं है। पुस्तक में पापक्षमा परक ही लिखा है। आगे पीछे के श्लोकों को पढ़ने से जो व्यक्त होता है वही अर्थ मैंने किया है उसमें कोई कल्पना नहीं।

६—आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में अवतारवाद का उल्लेख है—श्लोक ६ के पश्चात् एक श्लोक है। कुछ लोग इसको प्रक्षिप्त मानते हैं और कुछ लोग मूलग्रन्थस्थ मानते हैं। जो मूलग्रन्थ का अंश मानते हैं उनके अनुसार इसमें सूर्य को अवतार भी माना गया है। इसलिए पाप-क्षमा के समान ही यह भी महर्षि के विचार के तथा वैदिक सिद्धान्त के विरुद्ध है।

७—आधुनिक सूर्यसिद्धान्त ने स्वयं अपने को नवीन घोषित किया—प्राचीनकाल में सूर्यसिद्धान्त नामक कोई आर्ष ग्रन्थ ज्यौतिष का था। कालान्तर में प्रणष्ट हुआ। उसी नाम से किसी ने पुस्तक की रचना आरम्भ की। सूर्यांश पुरुष मय से स्वयं कह रहा है कि पहले सूर्यसिद्धान्त नाम का ज्यौतिष ग्रन्थ था। नवीन रचना करते समय कर्त्ता को यह सन्देह उत्पन्न हो ही गया कि कहीं मेरे ग्रन्थ को आशंका

की दृष्टि से न देखें। मैं अपनी रचना को परम्परागत आद्यसूर्यसिद्धान्त कैसे सिद्ध करूँ। यह विचार आरम्भ हुआ, इसके लिए उसने उपाय सोचकर एक मयासुर सूर्यांश पुरुष की कथा घड़कर अपनी रचना को प्राचीन सूर्यसिद्धान्त से अभिन्न प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया। यह कथा ऐसी ही है जैसे मुसलमानों की कुरान की कथा। मुसलमान यह मानते हैं कि खुदा ने मोहम्मद साहब पर आयतें उतार दीं। वास्तव में यह आद्य ही होता तो "शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत् पूर्वं प्राह भास्कर:" श्लोक रचना की आवश्यकता ही नहीं थी। श्लोक कर्त्ता ने 'विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्' की उक्ति चरितार्थ की है। कहना चाहते थे कि उससे यह अभिन्न है। इससे यह सिद्ध हुआ कि इससे भिन्न भी पूर्व था अब तो सन्देह का अवसर ही नहीं रहा कि यह ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त के नाम से कल्पित है वास्तविक नहीं। इसको ऋषि के शब्दों में पढ़ना चाहें तो १४वें समुल्लास की प्रथम आयत की समीक्षा तथा वर्णोच्चारण शिक्षा की भूमिका पढ़लेवें।

आचार्य कमलाकर जी ज्यौतिष के एक प्रतिभाशाली विद्वान् हुए हैं। उन्होंने इस मयासुर संहिता के सम्बन्ध में लिखा है कि 'वेद एव रवितन्त्रम्' अर्थात् यह सूर्यसिद्धान्त वेद ही (वेद के समान) है। ज्ञान विज्ञान के विवेक से रहित पौराणिक आज भी इसको सूर्य की आराधना से मय को लब्ध ही मानते हैं। यदि यह साक्षात् कमलाकर के कथनानुसार[1] वेदवत् सूर्य (ईश्वर) कृत होता तो मध्य में ही नष्ट क्यों हुआ ? यदि कहो कि बीज के निमित्त पुनः प्रवचन किया; तो ईश्वर ने सर्वाङ्ग सुन्दर सर्वज्ञकल्प ग्रन्थ क्यों नहीं बनाया जैसा कि वेदों को बनाया ? इससे ईश्वर सर्वज्ञ भी नहीं रहेगा।

८—**आधुनिक सूर्यसिद्धान्त लाटकृत है**—अलबेसनी ने लिखा है कि

१. अध्याय १४ श्लोक २६ में ब्रह्मसम्मितम् कहकर शास्त्रकार ने इसको वेद के समान माना है।

सूर्यसिद्धान्त लाटकृत है। इन बातों से स्पष्ट हो गया कि महर्षि का अभिप्रेत सूर्यसिद्धान्त आधुनिक सूर्य सिद्धान्त नहीं हो सकता।

९—**आधुनिक सूर्यसिद्धान्त मौलिक रचना नहीं है**—यह कई आधुनिक ग्रन्थों का संग्रह है। इसके विषय में विस्तारपूर्वक पढ़ना हो तो भारतीय ज्योतिष पढ़ें।

१०—**आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में अंक, बीज और रेखागणित नहीं हैं**—महर्षि ने संस्कारविधि में स्पष्ट लिखा है कि "सूर्यसिद्धान्तादि में से कोई एक सिद्धान्त से गणित विद्या, जिसमें बीजगणित, रेखागणित, पाटीगणित जिसको अङ्कगणित भी कहते हैं, पढ़ें और पढ़ावें"। इसी प्रकार ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में लिखा है कि "ज्योतिषं वसिष्ठाद्यृष्युक्तं रेखागणितमयं चेति" अर्थात् 'वसिष्ठादि ऋषिकृत ज्यौतिष ग्रन्थ जिसमें रेखागणित बीजगणित हो'। आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में गणित विद्या अर्थात् अङ्कगणित, बीजगणित और रेखागणित किसी भी प्रकार की गणित विद्या नहीं है। इसलिए महर्षि का प्रतिपादित सूर्यसिद्धान्त यह नहीं हो सकता।

११—**आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में भूगोल तथा खगोल के विरुद्ध लिखा है**—महर्षि का अभिमत सूर्यसिद्धान्त वह है जिसमें भूगोल, खगोल और भूगर्भ विद्या हो। वर्तमान सूर्यसिद्धान्त में भूगर्भ विद्या नहीं है। खगोल विद्या भी नाममात्र है। इससे अतिरिक्त खगोल और भूगोल के विरुद्ध बहुत सी बातें हैं। खगोल के विषय में कहते हैं कि—

ब्रह्माण्डमेतत्सुषिरं तत्रेदं भूर्भुवादिकम्।
कटाहद्वितयस्यैव सम्पुटं गोलकाकृतिः ॥२९॥
ब्रह्माण्डमध्ये परिधिव्योमकक्षाभिधीयते।
तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोऽधः क्रमशस्तथा ॥३०॥
मन्दामरेज्यभूपुत्रसूर्यशुक्रेन्दुजेन्दवः।
परिभ्रमन्त्यधोऽधस्ता सिद्धाविद्याधराघनाः ॥३१॥

मध्येसमन्तादण्ठस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति।
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥३२॥

अर्थ—यह ब्रह्माण्ड अवकाशयुक्त है। उसमें भूर्भुव आदि लोक हैं। यह ब्रह्माण्ड दो कढ़ाइयों के सम्पुट के समान यह गोलाकार में है। उस ब्रह्माण्ड में परिधि का नाम व्योमकक्षा है। उसके मध्य में नक्षत्र भ्रमण करते हैं उसके नीचे-नीचे क्रम से शनि, गुरु, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्र भ्रमण करते हैं। उसके नीचे सिद्ध विद्याधर और मेघ हैं। ब्रह्मा की धारणात्मिकी परमशक्ति के आधार पर ब्रह्माण्ड के मध्य यह भूगोल खड़ा है। हिरण्यगर्भ के मध्य में (अण्डमध्य में) पृथिवी स्थिर रूप से खड़ी है, उसके ऊपर मेघ, विद्याधर, सिद्ध, चन्द्र, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, गुरु, शनि और नक्षत्र हैं। भूगोल के लिए कहा है कि 'तिष्ठति'। तिष्ठति क्रिया ष्ठा गतिनिवृत्तौ धातु से बनी है जिसका अर्थ गति का अभाव होना है। अर्थात् अचल, स्थिर है। इसके विपरीत सूर्य आदि के लिए कहा है कि परिभ्रमन्ति, सूर्य आदि ग्रह पृथिवी के चारों ओर भ्रमण करते हैं।

प्रश्न—पृथिवी घूमती है किन्तु सूर्य ही स्थिर है (अर्थात् अपनी परिधि में घूमता है) किन्तु समझाने के लिए (जैसे कि पृथिवीस्थ मनुष्यों को सूर्य घूमता हुआ और पृथिवी स्थिर दीखती है) सूर्य को घूमता हुआ तथा पृथिवी को स्थिर ठहरा हुआ लिखा है। वास्तव में मय तो पृथिवी को घूमती हुई और सूर्य को अपनी परिधि में घूमता मानता है?

उत्तर—इस सम्पूर्ण पुस्तक में कहीं भी ऐसा नहीं लिखा है जैसा आपने कहा है। यदि दुर्जनतोष न्याय से कुछ क्षण के लिए आपके कथन को मान भी लें तो पुस्तक में 'वदतो व्याघात' दोष होगा। क्यों कि एक युग में सूर्य पृथिवी की परिक्रमा ४३२०००० तेतालीस लाख बीस हजार वार करता है। यह इस ग्रन्थ में लिखा है। यदि ग्रन्थकार

पृथिवी को चल मानता तो पृथिवी की परिक्रमा की संख्या लिखता। जैसा कि आर्य भट्ट ने अपने आर्यभट्टीयं में पृथिवी को चल कहकर उसके भगण लिखे हैं। सूर्य के चारों ओर पृथिवी का घूमना मान लें तो सूर्य को अण्ड के मध्य में मानना होगा जो ग्रन्थकार के 'मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति' कथन के विरुद्ध होगा। तीसरा दोष यह होगा कि सूर्य की कक्षा का मान योजनों में दिया है न कि पृथिवी की। चौथा यह होगा कि चन्द्र का पृथिवी के चारों ओर घूमना न मानकर सूर्य के चारों ओर घूमना मानना पड़ेगा जो प्रत्यक्ष विरुद्ध तथा सर्वशास्त्र विरुद्ध होगा। इसलिए यह सत्य है कि मयासुर पृथिवी को स्थिर और सूर्य को उसके चारों ओर घूमता मानता है। स्वामी जी ने लिखा है कि—

प्रश्न—कितने ही लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता है और पृथिवी घूमती नहीं, दूसरे कहते हैं कि पृथिवी घूमती है सूर्य नहीं घूमता। इसमें सत्य क्या माना जाय ?

उत्तर—'यह दोनों आधे झूठे हैं।……जो सूर्य को स्थिर कहते हैं वे भी ज्योतिर्वित् नहीं हैं।' महर्षि के लेख की अर्थापत्ति यह है कि जो पृथिवी को स्थिर कहते हैं वे भी ज्योतिर्विद्यावित् नहीं हैं। इससे अतिरिक्त वेद में स्पष्ट लिखा है कि "आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः॥ यजु० ३।६॥ अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है इसलिए भूमि घूमा करती है"। "आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन्॥" यजु० ३२।४३॥ जो सविता अर्थात् सूर्य वर्षादि का कर्त्ता, प्रकाशस्वरूप, तेजोमय, रमणीय स्वरूप के साथ वर्तमान, सब प्राणि-प्राणियों में अमृतरूप वृष्टि वा किरण द्वारा अमृत का प्रवेश करा और सब मूर्तिमान द्रव्यों को दिखलाता हुआ सब लोकों के साथ आकर्षण गुण से सह वर्तमान, अपनी

परिधि में घूमता रहता है किन्तु किसी लोक के चारों ओर नहीं घूमता।" इससे सिद्ध हो गया कि मयासुर ने वेद-विरुद्ध तथा सृष्टिक्रम विरुद्ध मत उपस्थित किया। इसलिए यह सूर्यसिद्धान्त ऋषि दयानन्द का मान्यग्रन्थ नहीं हो सकता।

मयासुर ने यहां साथ में यह भी कह दिया कि इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड (विश्व) के मध्य में हमारी पृथिवी स्थित है। इसके चारों ओर ग्रह नक्षत्रादि घूमते हैं। अर्थात् इस अनन्त सृष्टि के मध्य में हमारी पृथिवी है। यह महर्षि के लेख के ठीक विरुद्ध है, आधुनिक ज्योतिर्वित् जगत् के विरुद्ध भी है। महर्षि ने ब्रह्माण्ड अनेक माने हैं "एक-एक ब्रह्माण्ड में एक सूर्य प्रकाशक और दूसरे सब लोक लोकान्तर प्रकाश्य हैं" स० प्र० अष्टमसमुल्लास। आगे चलकर यह भी लिखा है कि 'एक भूमि के पास एक चन्द्र और अनेक भूमियों के मध्य में एक सूर्य रहता है।' इससे स्पष्ट है कि ऋषि ने ब्रह्माण्ड के मध्य में सूर्य को माना है और मयासुर ने पृथिवी को माना है।

१२—**आधुनिक सूर्यसिद्धान्त भूगर्भ विद्या के विरुद्ध है**—अब भूगर्भ विद्या के सम्बन्ध में विचारते हैं। मयासुर ने लिखा है कि—

तदन्तरपुटाः सप्त नागासुरसमाश्रयाः।
दिव्यौषधिरसोपेता रम्याः पातालभूमयः ॥१२।३३॥

अर्थ—उस (पृथिवी) के अन्तः सात पर्त हैं (जैसे प्याज के छिलके एक के नीचे एक होते हैं) ये नाग (वासुकि आदि) असुर=दैत्यों के आश्रय हैं। दिव्यौषधियों के रसों से युक्त हैं। सुन्दर हैं। ये ही सात अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, पाताल भूमियां हैं। भूमि के भीतर सात पर्त पाताल=लोक हों जिनमें नाग तथा असुर रहते हों तथा वे दिव्यौषधियों के रसों से जीवित रहते हों। यह भूगर्भ विद्या नहीं है, पौराणिक कल्पना तथा प्रत्यक्ष विरुद्ध है।

अब मयासुर की भूगोल विद्या पर दृष्टि डालते हैं। सूर्य सिद्धान्त के १२ अध्याय में लिखा है कि—

अनेकरत्ननिचयो जाम्बूनदमयो गिरिः ।
भूगोलमध्ये मेरुरुभयत्र विनिर्गतः ॥३४॥
उपरिष्टात्स्थितास्तस्य सेन्द्रा देवा महर्षयः ।
अधस्तादसुरास्तद्वद्द्विषन्तोऽन्योन्यमाश्रिताः ॥३५॥
ततः समन्तात्परिधिः क्रमेणायं महार्णवः ।
मेखलेव स्थितो धात्र्या देवासुरविभागकृत् ॥३६॥

अर्थ—मेरुपर्वत भूगोल के मध्य में आरपार दोनों ओर से निकला हुआ, जम्बू नदी से सुशोभित तथा बहुविध रत्नों से युक्त है। उसके ऊपर इन्द्र समेत देवता और महर्षि स्थित हैं। असुर देवताओं से द्वेष करते हुए उसी प्रकार नीचे (दक्षिण ध्रुव पर) रहते हैं। चारों ओर परिधि के रूप में पृथिवी की मेखला के सदृश महासमुद्र देवासुरों को विभक्त करता है। इसी प्रकार बहुत सारा वर्णन है। उसमें से स्थाली पुलाक न्याय से किञ्चिन्मात्र है। महर्षि ने सुमेरु के सम्बन्ध में इससे भिन्न लिखा है कि "सुमेरु बिना हिमालय के दूसरा कोई नहीं।" उन मेरुओं पर मनुष्यादि का होना तथा उनका जीवित होना और एक दूसरे से द्वेष करना सब कल्पित है। इससे महर्षि का 'वेदमतानुयायी सूर्यसिद्धान्तादि ज्योतिष ग्रन्थों के अध्ययन से ठीक-ठीक भूगोल, खगोल विदित हुए' उपपन्न नहीं होता।

१३—**आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में हस्तक्रिया तथा यन्त्रकला की विद्या नहीं है**—आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में महर्षि निर्दिष्ट हस्तक्रिया तथा यन्त्र कला की विद्या नहीं है।

१४—**आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में एकं दशशतं आदि श्लोक नहीं हैं**—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में सूर्यसिद्धान्त के नाम से उद्धृत दो श्लोक आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में नहीं हैं।

१५—**यत्रतत्र सूर्यसिद्धान्त के नाम से उद्धृत श्लोक आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में नहीं मिलते**—जैसा कि पूर्वत्र लिखा था कि ग्रन्थ के अन्तः

साक्ष्य से ही सिद्ध होता है कि इससे पूर्व सूर्यसिद्धान्त नामक ज्यौतिष ग्रन्थ रहा है; उसको अन्य प्रमाणों से भी सिद्ध किया जाता है।

क—वराहमिहिर की बृहत्संहिता व्याख्या में व्याख्याकार भट्टोत्पल ने सूर्यसिद्धान्त के नाम से जो श्लोक दिए हैं वे आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में नहीं हैं। श्लोक नीचे दिए जाते हैं—

महतश्चाप्यधस्थस्य नित्यं भासयते रविः।
अर्धं शशांकबिम्बस्य न द्वितीयं कथञ्चन॥
तेजसां गोलकाः सूर्यो ग्रहर्क्षाण्यम्बुगोलकाः।
प्रभावन्तो हि दृश्यन्ते सूर्यरश्मिविदीपिताः॥
विप्रकर्षं यथायाति ह्यधस्थश्चन्द्रमारवेः।
तथा तस्य च भूदृश्यमशं भासयते रविः॥ अ० ४, चन्द्र ४॥
इन्दुना छादितं सूर्यमधोविक्षिप्तगामिना।
न पश्यन्ति यदा लोके तदा स्याद् भास्करग्रहः॥
तमोमयस्य तमसो रविरश्मिपलायिनः।
भूच्छाया चन्द्रबिम्बं च स्थाने द्वे परिकल्पिते॥ अ० ५, राहु ४॥

इन श्लोकों से मेरा अभिप्राय यह है कि सूर्यसिद्धान्त नामक कोई आर्ष ग्रन्थ रहा है। जिसके लुप्त होने से लोगों ने उसके स्थान पर उसी नाम से ग्रन्थ बना लिए।

१६—**सूर्यसिद्धान्त अनेक हैं**—प्राचीन सूर्यसिद्धान्त तथा आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में भगणों में नितान्त भिन्नता है। इसको देखकर कोई भी ज्यौतिषी न यह कह सकता और न ही मान सकता कि सूर्यसिद्धान्त एक ही है। उन भगणों को नीचे उद्धृत करता हूँ। ये 'भारतीय ज्योतिष' से दिये जाते हैं।

	प्राचीन सूर्यसिद्धान्त	**आधुनिक सूर्यसिद्धान्त**
वर्षप्रमाण	३६५ दिन १५ घटी ३१ पल ३० विपल	३६५ दिन १५ घटी ३१ पल ३१ विपल २४ प्रतिविपल

महायुग में नक्षत्र भ्रम	१५८२२३७८००	१५८२२३७८२८
रविभ्रम	४३२००००	४३२००००
सावनदिन	१५७७९१७८००	१५७७९१७८२८
चन्द्रभगण	५७७५३३३६	५७७५३३३६
चन्द्रोच्चभगण	४८८२१९	४८८२०३
मंगल ,,	२२९६८२४	२२९६८३२
बुध ,,	१७९३७०००	१७९३७०६०
गुरु ,,	३६४२२०	३६४२२०
शुक्र ,,	७०२२३८८	७०२२३७६
शनि ,,	१४६५६४	१४६५६८
सौरमास	५१८४००००	५१८४००००
अधिमास	१५९३३३६	१५९३३३६
चान्द्रमास	५३४३३३३६	५३४३३३३६
तिथि	१६०३००००८०	१६०३००००८०
क्षयाह	२५०८२२८०	२५०८२२५२

इनमें स्पष्ट अन्तर है। ये भगण ग्रन्थ के मूलभूत तथा उद्देश्य रूप में हैं, जिन पर ग्रन्थ आधारित है जिनके विना ग्रन्थ नहीं बनाया जा सकता। इनसे अतिरिक्त आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में सृष्ट्युत्पत्ति में ४७४०० दिव्य वर्षों की संख्या (१७०६४००० वर्ष) मानी है, जब कि प्राचीन सूर्यसिद्धान्त में यह बात नहीं दीखती।

१७—**आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में लिखित सृष्टि-रचना वेद तथा शास्त्रों से विरुद्ध है**—सृष्टि उत्पत्ति के विषय में महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास में लिखा है। अब आधुनिक सूर्यसिद्धान्त के १२वें अध्याय में लिखित सृष्टिरचना प्रक्रिया को उपस्थित करता हूँ।

वासुदेवः परं ब्रह्म तन्मूर्तिः पुरुषः परः।
अव्यक्तो निर्गुणः शान्तः पञ्चविंशात्परोऽव्ययः ॥१२॥

प्रकृत्यन्तर्गतो देवो बहिरन्तश्च सर्वगः ।
सङ्कर्षणोऽपः सृष्ट्वादौ तासु वीर्यमवासृजत् ॥१३॥
तदण्डमभद्धैमं सर्वत्र तमसावृतम् ।
तत्रानिरुद्धः प्रथमं व्यक्तीभूतः सनातनः ॥१४॥
हिरण्यगर्भो भगवानेष च्छन्दसि पठ्यते ।
सोऽहङ्कारं जगत्सृष्टयै ब्रह्मापमसृजत्प्रभुः ॥२०॥
तस्मै वेदान् वरान् दत्त्वा सर्वलोकपितामहम् ।
प्रतिष्ठाप्याण्डमध्येऽथ स्वयं पर्येति भावयन् ॥२१॥

अर्थ—परं ब्रह्म वासुदेव हैं। इनकी मूर्ति परम पुरुष है जो अव्यक्त शान्त और अव्यय और सांख्य शास्त्र के तत्त्वों से परे है। बाहर भीतर सर्वव्यापक देवता ने प्रकृति में प्रवेश करके संकर्षण नामक जल की सृष्टि प्रारम्भ में करके उसमें बीज रखा। वह सोने का अण्डा हुआ। उसमें चारों ओर अन्धकार था। इसमें सनातन अनिरुद्ध पहले प्रकट हुए। इन्हीं को वेद में हिरण्यगर्भ कहा गया है। इसी प्रभु ने जगत् की सृष्टि के लिए अहङ्काररूपी ब्रह्मा को बनाया। इसके पश्चात् सब लोकों के पितामह ब्रह्मा को श्रेष्ठ वेदों को देकर और इन्हें अण्डे के मध्य में स्थापित करके अनिरुद्ध स्वयं लोकों को प्रकाशित करता हुआ घूमता है।

समीक्षा—महर्षि कपिल द्वारा बतलाया हुआ सृष्टि का क्रम जो कि दार्शनिक जगत् में सर्वमान्य तथा सत्य से परिपूर्ण है उसको नीचे दिया जाता है। सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारः अहङ्कारात्पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति विंशतिर्गणः।

प्रकृति से महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से अहङ्कार, अहङ्कार से पञ्चतन्मात्राएं ५ ज्ञानेन्द्रिय ५ कर्मेन्द्रिय ग्यारहवां मन, पञ्चतन्मात्राओं से ५ स्थूलभूत उत्पन्न होते हैं। यह है सृष्टि का क्रम, जिसको दार्शनिक

विद्वान् यथावत् मानते हैं और मयासुर प्रोक्त सृष्टि क्रम को भी देख लें। इन दोनों प्रक्रियाओं का परस्पर क्या सम्बन्ध है यह स्पष्ट हो जायगा। चारों वेदों में, उपवेदों में, ब्राह्मण ग्रन्थों में, उपनिषदों में, वेदाङ्गोपाङ्गों में, रामायण और महाभारत में किसी आर्ष ग्रन्थ में ऐसी प्रक्रिया मेरे देखने में नहीं आई।

वासुदेव परब्रह्म है। वह पञ्चविंश से परे है। महर्षि कपिल ने जो २५ तत्त्व गिनाए हैं उनसे परे है। इसका सीधा अर्थ है कि इस तत्त्व को कपिल मुनि ने नहीं गिनाया अर्थात् वे नहीं जानते थे। इसकी अर्थापत्ति यह है कि कपिल नास्तिक थे। वास्तव में सूत्रस्थ पुरुष शब्द से दोनों चेतन ईश्वर तथा जीव संगृहीत हैं। इसलिए परब्रह्म पञ्चविंश से परे नहीं है अपितु उसी के अन्तर्गत आता है। ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा, समाधिसुषुप्ति मोक्षेषु ब्रह्मरुपता आदि सूत्रों से कपिल ईश्वरवादी थे। यही स्पष्ट है। वासुदेव, संकर्षण और अनिरुद्ध ये निश्चित रूप से क्रमशः श्रीकृष्ण, बलराम और श्रीकृष्ण के पौत्र के नाम हैं। इसमें सन्देह का अवकाश नहीं है। संकर्षणोऽपः की कल्पना सांख्योक्त प्रक्रिया से विरुद्ध है। संकर्षण से अनिरुद्ध नामक स्वर्ण अण्डे की उत्पत्ति हुई। वही अण्डा हिरण्यगर्भ था। उसी ने जगत् की उत्पत्ति के लिए अहङ्कार ब्रह्मा को सृजा। अनिरुद्ध जड़ था वा चेतन? स्वर्ण अण्डा तो चेतन नहीं हो सकता। जड़ अण्डा कौन था? वेद में तो सर्वज्ञ, सर्वव्यापक ईश्वर को हिरण्यगर्भ कहा है अहंकार तो जड़ है। यहां अहंकार को ब्रह्मा कहा गया है अर्थात् चेतन हुआ। जड़ हिरण्यगर्भ से चेतन ब्रह्मा कैसे उत्पन्न हुआ? चार्वाक की चतुर्भ्यः खलु भूतेभ्यश्चैतन्यमुपजायते की उक्ति के अनुसार तो नहीं हुआ? अथवा किसी अन्य प्रकार से?

१८—जड़ अहङ्कार को ब्रह्मा कहा गया है—अध्याय १२ श्लोक २० में अहङ्कार को ब्रह्मा कहा है, उसी को वेद दिए।

१६—**ब्रह्मा के द्वारा वेदों का आविर्भाव हुआ।** ब्रह्मा को चार वेदों का देना ऋषि दयानन्द ने मिथ्या कहा है। इसके लिए सत्यार्थ-प्रकाश सप्तम समुल्लास के प्रसंग को उद्धृत करते हैं—

"प्रश्न—किन के आत्मा में कब वेदों का प्रकाश किया ?

उत्तर—अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः॥ शतपथ का० ११। अ० ५। ख ८। कं० ३॥ प्रथम सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु आदित्य तथा अंगिरा इन ऋषियों के आत्मा में एक-एक वेद का प्रकाश किया।

प्रश्न—यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। श्वेताश्वतर ६। १८॥ यह उपनिषद् का वचन है। इस वचन से ब्रह्मा जी के हृदय में वेदों का उपदेश किया है। फिर अग्न्यादि ऋषियों के आत्मा में क्यों कहा ?

उत्तर—ब्रह्मा के आत्मा में अग्नि आदि के द्वारा स्थापित कराया। देखो, मनु ने क्या लिखा है—

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्मसनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुसामलक्षणम् ॥१।२८॥

जिस परमात्मा ने आदि सृष्टि में मनुष्यों को उत्पन्न करके अग्नि आदि चारों महर्षियों के द्वारा चारों वेद ब्रह्मा को प्राप्त कराए और उस ब्रह्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा से ऋग्, यजु, साम और अथर्ववेद का ग्रहण किया।"

इसी विषय का ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वेदोत्पत्ति विषय में सविस्तार व्याख्यान किया है। ऋषिवर ने जिसका सबल शब्दों में सप्रमाण खण्डन किया हो उसी का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थ को क्या ऋषि जैसे सिद्धान्तवादी प्रमाणकोटि में लिख सकते हैं ? असंभव सर्वथा असम्भव।

प्रश्न—**सोऽहङ्कारं जगत्सृष्ट्यै ब्रह्माणमसृजत्प्रभुः॥ १२। २०॥**

तस्मै वेदान् वरान् दत्त्वा......॥१२।२१॥

इसका अर्थ भी वैसा ही है। स्वामी जी ने जैसा ऊपर श्वेताश्वतर मन्त्र का अर्थ किया है कि "ब्रह्मा के आत्मा में अग्नि आदि के द्वारा स्थापित कराया" इसलिए वर्तमान सूर्यसिद्धान्त में स्वामी जी के सिद्धान्त एवं वैदिक मान्यता के विरुद्ध नहीं लिखा।

उत्तर—आपकी यह कल्पना है जो कि पूर्वापर प्रसंग को न देख कर की हुई है। यह कल्पना इसलिए है कि यह उस ग्रन्थ के विरुद्ध है। ग्रन्थ में अहंकार को ब्रह्मा कहा है। उसको जगत् बनाने के लिए उत्पन्न किया है। जब सृष्टि बनी ही नहीं तो अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा भी नहीं थे। अब तक कोई मनुष्य ही नहीं उत्पन्न हुआ। अतः वादी की यह कल्पनामात्र है तथा ग्रन्थस्थ प्रकरण के विरुद्ध भी। इसलिए यह सिद्ध है कि वैदिक परम्परा और ऋषि दयानन्द के विरुद्ध लिखा कि वेद ब्रह्मा को दिए।

अहंकार नामक ब्रह्मा ने सृष्टि रचना की। अहंकार वा ब्रह्मा सृष्टि रचना करता है यह वदतोव्याघात है। अहंकार वा ब्रह्मा की सृष्ट्युत्पत्ति से पूर्व जगत् की सृष्टि आरम्भ हो चुकी थी। उस सृष्टि की कड़ी अनिरुद्ध माना गया। क्या अनिरुद्ध जगत् से बाहर था? यदि सृष्टि थी ही नहीं तो यह बतलाइए कि अनिरुद्ध कौन था और कहां से आया? अनिरुद्ध उत्पन्न हुआ तो जब सृष्टि का प्रारम्भ हो चुका तब इसका क्या अर्थ है कि अनिरुद्ध ने अहङ्कार को जगत् सर्जन के लिए उत्पन्न किया। शिवपुराणोक्त सृष्टि प्रक्रिया की आलोचना करते हुए महर्षि ने लिखा है कि "भला कोई इन पुराणों के बनाने वाले पोपों से पूछे कि जब सृष्टि तत्व और पंच महाभूत भी नहीं थे तो ब्रह्मा, विष्णु, महादेव के शरीर जल, कमल, लिङ्ग, गाय और केतकी का वृक्ष और भस्म का गोला क्या तुम्हारे बाबा के घर में से आ गिरे?" यह भी इसी प्रकार है। अब अहंकार ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। जगत् को बनाने के

लिए अब तक बने संकर्षण, आपः, अनिरुद्ध, हिरण्यगर्भ, अहंकार क्या जगत् नहीं ? क्या ये उत्पन्न नहीं हुए; नित्य हैं ? यदि नित्य हैं तो उत्पन्न क्यों लिखा ? यदि उत्पन्न हैं तो जगत्सृष्टि आरम्भ हो चुकी। फिर ब्रह्मा को जगत् की उत्पत्ति के लिए कहना वदतोव्याघात नहीं। वास्तव में यह पौराणिक कल्पना है। ऐसे ग्रन्थों को महर्षि प्रमाण-कोटि में नहीं मान सकते।

२०—महत्तत्त्व के सम्बन्ध में आधुनिक सूर्यसिद्धान्त—

परं ज्योतिस्तमः पारे सूर्योऽयं सवितेति च।
पर्येति भुवनान्येव भावयन्भूतभावनः ॥१६॥
प्रकाशात्मा तमोहन्ता महानित्येष विश्रुतः।
ऋचोऽस्य मण्डलं सामान्युस्र मूर्तिर्यजूंषि च ॥१७॥
त्रयीमयोऽयं भगवान् कालात्मा कालकृद्विभुः।
सर्वात्मा सर्वगः सूक्ष्मः सर्वमस्मिन् प्रतिष्ठितम् ॥१८॥
रथे विश्वमये चक्रं कृत्वा संवत्सरात्मकम्।
छन्दांस्यश्वा सप्रयुक्ताः पर्यटत्येष सर्वदा ॥१९॥
त्रिपादममृतं गुह्यं पादोऽयं प्रकटोऽभवत्।

अर्थ—यह अनिरुद्ध ही परम ज्योतिर्मय सविता है। भूतों की उत्पत्तिस्थितिलयकर्त्ता भुवनों में पर्यटन करता है। प्रकाश स्वरूप है। अन्धकार का हनन करने वाला महान्=महत्तत्त्व कहलाता है। इसका ऋग्वेद मण्डल है; सामवेद किरण है, यजुर्वेद मूर्ति के समान है। यह वेदत्रयात्मक है। काल का आत्मा, काल का कर्त्ता और विभु है। सब का आत्मा, सर्वत्र गमन करने वाला; सूक्ष्म है। सब इसमें प्रतिष्ठत हैं। विश्वरूपी रथ में संवत्सरको चक्रवत् बनाकर सात छन्दों को घोड़े बनाकर यह सर्वदा भ्रमण करता है। इसके तीन पाद अमृत तथा गुह्य हैं। एक पाद यह प्रगट जगत् है।

समीक्षा—महत्तत्व का ऐसा वर्णन किसी शास्त्र में उपलब्ध नहीं

होता। महत्तत्व किन भुवनों का पर्यटन करता है? ऋचाएं मण्डल किस प्रकार हैं? सामवेद किरण कैसा? यजुर्वेद मूर्ति के सदृश कैसा? वेदत्रय का महत्तत्व का क्या सम्बन्ध? महत्तत्त्व का और काल का क्या सम्बन्ध है? संवत्सर क्या है? महत्तत्त्व भ्रमण क्यों करता है। तीन पाद अमृत कैसे? एक पाद मरणधर्मा होगा? क्या महत्तत्व कभी नष्ट नहीं होता? नित्य रहेगा? यदि कारण रूप में नित्य है तो पञ्चभूत भी नित्य होंगे? ऐसा वर्णन किस वेद में, किस शास्त्र में है? यह कैसी दार्शनिकता?

२१—मन से चन्द्रमा तथा पञ्चभूतों की उत्पत्ति—

अथ सृष्ट्यां मनश्चक्रे ब्रह्माहंकारमूर्तिभृत्।
मनसश्चन्द्रमा जज्ञे सूर्योऽक्ष्णोस्तेजसां निधिः ॥२२॥
मनसः खं ततो वायुरग्निरापो धराक्रमात्।
गुणैकवृद्ध्या पञ्चैव महाभूतानि जज्ञिरे ॥२३॥

अर्थ—पश्चात् अहंकार मूर्तिधारी ब्रह्मा ने सृष्टि में मन को रचा। मन से चन्द्रमा और नेत्रों से तेजःपुञ्ज सूर्य उत्पन्न हुआ। मन से आकाश उससे क्रमशः वायु, अग्नि, जल और पृथिवी उत्तरोत्तर एक एक गुण की वृद्धि से पंचमहाभूत उत्पन्न हुए।

समीक्षा—मन से चन्द्रमा का उत्पन्न होना असंभव है। मन से कोई तत्त्वान्तर उत्पन्न नहीं होता इस प्रकार महर्षि पतञ्जलि के सूत्र-भाष्य में महर्षि व्यास[1] ने तथा सांख्य में महर्षि कपिल ने प्रतिपादित किया है जिसको महर्षि दयानन्द भी यथावत् मानते हैं। नेत्रों से सूर्य का उत्पन्न होना मिथ्या है। क्योंकि सूर्य से जीवन होता है। सूर्य के विना जीवन नहीं। जब जीवन ही नहीं तो नेत्र कहां? अहंकार के नेत्र होते ही नहीं। अहङ्कार के क्या हाथ पैर भी होते हैं? क्या मन से आकाशादि पञ्चभूत उत्पन्न हो सकते हैं? सांख्यादि शास्त्रों में अहङ्कार

१. विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ॥ योगशास्त्र द्वितीयपाद

पञ्चसूक्ष्म भूतों की तथा सूक्ष्म भूतों से स्थूल भूतों की उत्पत्ति लिखी है। महर्षि दयानन्द जी ने समुल्लास ८ में लिखा है कि "अहंकार से भिन्न पांच सूक्ष्मभूत, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण पांच ज्ञानेन्द्रियां वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा ये पांच कर्मेन्द्रियां हैं और ग्यारहवां मन कुछ स्थूल उत्पन्न होता है और उन पांच तन्मात्राओं से अनेक स्थूलावस्थाओं को प्राप्त होते हुए क्रम से पांच स्थूलभूत जिनको हम लोग प्रत्यक्ष देखते हैं उत्पन्न होते हैं।" सूर्यसिद्धान्तकार का यह मत वैदिक सिद्धान्त के विरुद्ध होने से महर्षि इस ग्रन्थ को प्रमाण नहीं मान सकते।

२२—आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में ग्रहों की उत्पत्ति—

ग्रहों की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए इसी अध्याय में लिखा है कि—

अग्नीषोमौ भानुचन्द्रौ ततस्त्वङ्गारकादयः।
तेजो भूखाम्बुवातेभ्यः क्रमशः पञ्च जज्ञिरे ॥१२।२४॥

अर्थ—सूर्य अग्नि है चन्द्र सोम है (सोम का अभिप्राय यहां जल से होना चाहिए) पश्चात् अग्नि, पृथिवी, आकाश, जल, वायु, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि यथासंख्य उत्पन्न हुए।

समीक्षा—लगभग १०-१२ सौ वर्ष पूर्व जिस समय यह पुस्तक बनाया गया तब सात ही ग्रहों का ज्ञान रह गया था। श्लोकोक्त सप्त ही ग्रह थे। सृष्टि के क्रम में किसी न किसी प्रकार जोड़ तोड़ करना होगा। यही समझा होगा कि सूर्य-चन्द्र तो अधिक स्पष्ट दीख रहे हैं। सूर्य से उष्णता होती है। रात्रि में शीतलता है चन्द्र भी है। अतः सूर्य को तेज से और चन्द्र को सोम से अर्थात् शीतलता युक्त जल से उत्पन्न हुआ कह दिया। अब रह गये ५ ग्रह। उनको ५ भूतों से तुकबन्दी कर ली। इसमें विचारणीय यह है कि आकाश से गुरु ग्रह की उत्पत्ति कैसे हुई? और वायु से शनि की रचना कैसे हुई? इस मयासुर के ग्रन्थ

को प्रामाणिक मानने वाले कोई विद्वान् हों यदि वे इस रहस्य को समझे हों तो हमें बतलावें। वैज्ञानिकों के व महर्षि के कथनानुसार चन्द्र जलागार नहीं है। आधुनिक वैज्ञानिकों के कथनानुसार वहां पर जल नहीं है तो सोम कैसे चन्द्र हुआ ? मंगल कुछ-कुछ लालिमा लिये हुवे होता है इसलिये अग्नि से उत्पन्न कहा होगा ? तो पृथिवी को ग्रह क्यों नहीं माना ? नक्षत्रों की उत्पत्ति किन भूतों से हुई ? यूरेनस, नेपच्यून, प्लूटो और अभी अभी ज्ञात ग्रह, इनकी चर्चा क्यों नहीं की ? सूर्यांश पुरुष ने मय से नहीं कहा होगा अथवा भूल गया होगा कि वा मयासुर ही उस पाठ को भूल गया होगा ? वा इनका ज्ञान ही निरर्थक है ? जो भी हो महर्षि दयानन्द सरस्वती इन ज्ञान-विज्ञान विरुद्ध बातों से युक्त पुस्तकों को विद्या पुस्तक नहीं कह सकते। जैनियों एवं ईसाइयों के ईश्वर वा कुरान कर्ता खुदा की सृष्टि विरुद्ध सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, ग्रह, नक्षत्र, आकाश आदि की बातों की स्थान २ पर समीक्षा की। वहां स्वामी जी की ज्योतिष विषयक मान्यता को देख सकते हैं। वे कदापि इस सूर्यसिद्धान्त को प्रामाणिक नहीं मान सकते।

२३—**आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में असंभव बातें**—सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में असंभव बातें हैं। युगादि व्यवस्था के प्रसंग में लिखा है—

कृतः प्रमाणः कल्पादौ सन्धिः पञ्चदशः स्मृतः ॥१।१६॥

कल्प के आरम्भ में सन्धि हुई। सन्धि का अर्थ सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः कहकर ग्रन्थकार ने स्वयं स्पष्ट किया कि सन्धि में जलप्लव होता है। आगे लिखा है—

ग्रहर्क्षदेवदैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम्।
कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शतघ्ना वेधसो गताः ॥१।२४॥

ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य आदि चराचर के उत्पन्न होने में ४७४०० दिव्याब्द अर्थात् १७०६४००० सौर वर्ष व्यतीत हुए। पूर्वोक्त सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रियानुसार संकर्षण, अनिरुद्ध, अहंकार, मन, आकाश, वायु,

अग्नि, जल तथा पृथिवी क्रम से उत्पन्न हुए। (भूगोलाध्याय श्लोक १२ से २३ पर्यन्त) यहां तक लक्षशः वर्ष लगे होंगे। किन्तु मयासुर ने अभी वासुदेव के द्वारा सृष्टि बनवाने से पूर्व ही जलप्लव करवा दिया। अभी तो जल ही नहीं बना, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकारादि कुछ भी तो नहीं बना। तब जलप्लव कैसे हुआ ? अथवा खुदा के समान कुछ कहते ही महत्तत्त्व अहंकार तन्मात्राएँ, एकादशेन्द्रिय तन्मात्राओं से स्थूल भूत बन भी गए, जलप्लव भी हो गया ? क्या ब्रह्मा ने जलप्लव के पश्चात् पुनः सृष्टि बना दी…?

२४—**ब्राह्म आयु का अर्धभाग व्यतीत हुआ**—ऊपर के २४वें श्लोक में 'अस्य' के द्वारा सृष्टिकर्त्ता उसी को माना है जो २०-२१ श्लोकों में ब्रह्मा कहा गया है। जिसकी आयु १०० ब्राह्म वर्ष कहा गया है !!

परमायुः शतं तस्य तयाहोरात्रसंख्यया।
आयुषोऽर्धमितं तस्य शेषकल्पोऽयमादिमः ।। १।२१।।

जगतकर्त्ता ईश्वर नित्य होने से उसकी आयु नहीं है।

प्रश्न—कभी सृष्टि का प्रारम्भ है वा नहीं ?

उत्तर—नहीं। जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन तथा दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन बराबर चला आता है इसी प्रकार सृष्टि के पूर्व प्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि तथा सृष्टि के पीछे प्रलय और प्रलय के आगे सृष्टि अनादि काल से चक्र चला आता है। इसका आदि वा अन्त नहीं किन्तु जैसे दिन वा रात का आरम्भ और अन्त देखने में आता है उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय का आदि अन्त होता रहता है। क्योंकि जैसे परमात्मा, जीव, जगत् का कारण तीन स्वरूप से अनादि हैं, वैसे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय प्रवाह से अनादि हैं। जैसे नदी का प्रवाह वैसा ही दीखता है। कभी सूख जाता कभी नहीं दीखता फिर बरसात में दीखता और उष्ण काल में नहीं दीखता। ऐसे व्यवहारों को प्रवाह रूप जानना चाहिये। जैसे परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव अनादि हैं वैसे ही उसके जगत् की

उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करना भी अनादि है। जैसे कभी ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव का आरम्भ और अन्त नहीं इसी प्रकार उसके कर्त्तव्य कर्मों का भी आरम्भ और अन्त नहीं।

—स० प्र० अष्टम समुल्लास

वास्तव में मयासुर यहां भूल कर गया। नौ प्रकार के मानों में से एक है ब्राह्ममान जैसे कि मय ने स्वयं १४वें अध्याय में लिखा है कि—

ब्राह्मं दिव्यं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं गुरोस्तथा।
सौरं च सावनं चन्द्रमार्क्षं मानानि वै नव॥ १४।१॥

नौ मान होते हैं। ब्राह्ममान मुक्ति की अवधि के ज्ञान के निमित्त है। इस ब्राह्ममान से मय ने ब्रह्मा की आयु भ्रान्ति से मान लिया। साथ में यह भी कहा कि ब्राह्ममान का आधा समय व्यतीत हुआ। आधा शेष है। किन्तु महर्षि दयानन्द के वचन के विरुद्ध है। वैदिक प्रमाण न होने से यह कल्पना है और अवैदिक भी।

ऋग्वेदादिभाष्यमूमिका वेदोत्पत्ति में लिखा है:--

"आर्यैर्नित्यम्" ओं तत्सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीयप्रहरार्द्धे वैवस्वते-मन्वन्तरे……

पूर्वोक्त ब्राह्मदिन के दूसरे प्रहर के उपर मध्याह्न में बाकी रहे हैं। इसलिये यह लेख है—

(श्री ब्रह्मणो द्वितीयप्रहरार्द्धे)……

वर्तमान में पौराणिक पण्डित जो संकल्प पढ़ते हैं वह कुछ भिन्न तथा निम्न प्रकार है—

१. ओं तत्सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीयेऽपरार्द्धे…

२. ओं तत्सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीये परार्द्धे……

इसका कारण ऊपरलिखित परमायु शतं तस्य श्लोक है। **इसका अर्थ—ब्रह्मा की आयु उन्हीं के दिनमान से शतवर्ष है इस समय उसकी आयु का आधा व्यतीत हुआ। यह अवशिष्ट आयु अर्धभाग का प्रथम कल्प है।**

वटेश्वर नाम के एक ज्योतिषग्रन्थकर्त्ता ग्राचार्य हुवे हैं। उन्होंने 'कजन्मनोऽष्टौ सदला समा ययुः, लिखा है। इसका ग्रर्थ यह है कि ब्रह्मा की ग्रायु के साढ़े ग्राठ वर्ष व्यतीत हुए। इन दोनों में से किस पक्ष को माने किसको छोड़े? प्रमाणाभाव में दोनों पक्ष त्याज्य हैं।

इस पर ग्राचार्य भास्कर ने एक युक्तियुक्त वात लिखी है—

तथा वर्त्तमानस्य कस्यायुषोर्ध्वं गतं सार्धवर्षाष्टक केचिदूचुः।
भवत्वागमः कोऽपिनाऽस्योपयोगोग्रहावर्त्तमानद्युयातालयसाध्याः ॥ २६ ॥
यतोऽनादिमानेष कालस्ततोऽहं न वेद्भ्यत्रपद्मोद्भवा ये गतास्तान् ॥ २५ ॥

मध्यमाधिकार कालमानाध्याय

ब्रह्मा की ग्रायु का ग्रर्धभाग व्यतीत हुग्रा ऐसा कुछ लोगों ने कहा ग्रौर साढ़े ग्राठ वर्ष व्यतीत हुए ऐसा ग्रन्य लोगों ने। इसमें ग्रागम प्रमाण जो कोई भी हो उसका कोई उपयोग नहीं है। क्योंकि ज्योतिष में दिन के गत भाग से ग्रह स्पष्टीकरण साध्य है। इसका कारण काल का ग्रनादित्व है। ग्रतः मैं गत ब्राह्म वर्षों को नहीं जानता हूँ।

यदि ब्रह्मायु के गतवर्षों की संख्या होगी तो सृष्टि को प्रवाह से ग्रनादि कहने पर भी सादि हो गई, जो ग्रवैदिक धारणा है। इसलिये महर्षि मनु ने लिखा है कि—

मन्वन्तराण्यसंख्यानि सृष्टिः संहार एव च।
क्रीडन्निवैतत्कुरुते परमेष्ठी पुनः पुनः ॥ १ ॥ ८० ॥

महर्षि दयानन्द ने इसका ग्रभिप्राय लिखा है कि "इसी प्रकार ग्रसंख्यान्त मन्वन्तरों में कि जिनकी संख्या नहीं हो सकती ग्रनेक वार सृष्टि हो चुकी है ग्रौर ग्रनेक वार होगी।"

यदि इनकी संख्या होती तो ग्रवश्य लिखते। संख्या नहीं है ग्रतः नहीं लिखी। इससे विपरीत मय ने ब्रह्मा की ग्रायु लिखी है इसलिये

यह अनार्ष और काल्पनिक है। इसमें आधार न होने से निराधार है।

२५—**कर्मसिद्धान्तविरुद्ध कलियुगादि का कथन**—सूर्यसिद्धान्त में धर्म तथा गुणों के सम्बन्ध में लिखा है कि **कृतादीना व्यवस्थेयं धर्मपाद-व्यवस्थया ॥ १ । १६॥**

कृत, त्रेता, द्वापर और कलियुगों की यह व्यवस्था है कि सत्ययुग में धर्मसम्पूर्ण चार चरणों में युक्त रहता है। त्रेता में धर्म के तीन चरण रहते हैं। और अधर्म का एक चरण। द्वापर धर्म के दो चरण और अधर्म के भी दो चरण और कलि में धर्म का एक ही चरण रह जाता है और अधर्म के तीन चरण हो जाते हैं।

इससे यह निकला कि धर्माधर्म का मनुष्य के साथ सम्बन्ध नहीं है, किन्तु कृतादि युगों के साथ है। इसके अनुसार धर्माधर्म के करने में मनुष्य स्वतन्त्र नहीं है, अपितु कालाधीन है। यदि काल के वशीभूत होकर धर्माधर्म करता हो तो मनुष्य को उसका फल नहीं मिलना चाहिए। वैदिक सिद्धान्त कहता है कि मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है अर्थात् धर्माधर्म करने में स्वतन्त्र है. परतन्त्र नहीं। इसलिए महर्षि ने लिखा—'यह भी समझ लें कि धर्म हमारे आत्मा और कर्त्तव्य के साथ है।' इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि का अभीष्ट सूर्य-सिद्धान्त यह नहीं हो सकता। कलियुग नाम काल का है। काल निष्क्रिय होने से कुछ धर्माधर्म के करने में साधक बाधक नहीं······११ समु०

२६—**ग्रहों के पौराणिक नाम**—सूर्यसिद्धान्त में मंगलादि ग्रहों के लिए जिन नामों का प्रयोग किया है उनको देखकर यह कहना कठिन है कि यह वेदमतानुयायी है और वैदिक है। जैसा कि मंगल को कुज, भूसुत और भूमिपुत्र; बुध को ज्ञ, सौम्य और शशिज; गुरु को अमरेज्य, शुक्र को भृगु, भृगुज और भार्गव, शनि को अर्कज और आर्कि आदि कहा है। इन नामों के पीछे बहुत बड़ी पौराणिक पृष्ठभूमि है। इसकी व्याख्या विस्तारभय से यहां नहीं करूँगा। जो कोई देखना चाहे मेरे

बनाये 'ज्यौतिष विवेक' में देख लेवें। स्थाली पुलाक-न्याय से एक शब्द पर विचार करता हूँ। बुध को शशिज कहा है। शशि से उत्पन्न होने से शशिज होता है। शशि का व्यास लगभग २१६० मील है, जबकि बुध का २९०० मील है। ये दोनों लगभग ७०००००० सात करोड़ मील दूर पर हैं। चन्द्र उपग्रह है और बुध ग्रह है। उपग्रह से ग्रह का जन्म कैसे होगा ? इसकी ही कथा है कि जब बृहस्पति गुरु की पत्नी तारा से चन्द्र ने दुष्कर्म किया तब उससे बुध का जन्म हुआ। भाग० पु० ९।१४।। सौम्य नामक संवत्सर, भाद्रपद शु० ११ के उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में आत्रेयस गोत्र और मगध देश में चन्द्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार इन ग्रहों के नामों का अपना-अपना इतिहास है।[1] इससे स्पष्ट है कि महर्षि इस पौराणिक वा सृष्टिक्रम विरुद्ध ग्रन्थ को प्रामाणिक नहीं मान सकते।

२७—**आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में सृष्टि तथा कल्प भिन्न-भिन्न हैं**— मयासुर संहिता के अनुसार सृष्टि और कल्प के भिन्न अर्थ हैं। कल्प उसको कहा है जब से ब्राह्मदिन आरम्भ हुआ। ग्रहनक्षत्र, देवदैत्यादि के उत्पन्न होने के पश्चात् शेष ब्राह्मदिन जब से चला अर्थात् इनकी उत्पत्ति के पश्चात् से जिस काल की गणना की गई वह सृष्टि काल हुआ। मय के अनुसार विक्रमी २०३३ में १९७२९४९०७७ कल्प वर्ष हुए। ग्रहनक्षत्रादिक के उत्पन्न होने में १७०६४००० वर्ष मानकर शेष १९५५८८५०७७ वर्ष सृष्टि वत्सर हुए अर्थात् सृष्टि उत्पन्न होने के पश्चात् के वत्सर। किन्तु महर्षि ने कल्प और सृष्टि को अभिन्न एक ही माना है।

"वेदानामुत्पत्तौ कियन्ति वर्षाणि व्यतीतानि ? अत्रोच्यते एको वृन्दः षण्णवतिः कोटयोऽष्टौ लक्षाणि, द्विपञ्चाशत्सहस्राणि नवशतानि

---

१. इन ग्रहों की विचित्र बातों का ज्ञान करना हो तो मेरे बनाये ज्यौतिष विवेक ग्रन्थ के सप्तदश समुल्लास में पढ़ें।

षट्सप्ततिश्चैतावन्ति वर्षाणि व्यतीतानि। सप्तसप्ततितमोऽयं संवत्सरो वर्तत इति वेदितव्यम्। एतावन्त्येव वर्षाणि वर्त्तमानकल्पसृष्टेश्चेति" (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेदोत्पत्ति०) इसलिए यह ग्रन्थ ऋषि-सम्मत नहीं।

२८—**आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में खगोल-विरुद्ध बातें**—१२वें अध्याय के ३१वें श्लोक में "सिद्धा विद्याधरा घनाः" लिखा है। जिसका अर्थ है चन्द्र और पृथिवी के मध्य में सिद्ध पुरुष विद्याधर और मेघ हैं। मेघ हैं यह प्रत्यक्ष है; किन्तु सिद्ध और विद्याधर लिखा है, ये कौन हैं···? इनका क्या स्वरूप है? मनुष्याकार में रहते हैं अथवा अन्य पशुपक्षी आदि आकार में? जड़ हैं वा चेतन? वे आकाश में किस प्रकार रहते हैं? वास्तव में यह मिथ्या विश्वास है, कल्पित है, निराधार है।

२९—**आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में ग्रह, नक्षत्र और गुह्यकादि की पूजा का विधान**—

अथ गुप्ते शुचौ देशे स्नातः शुचिरलङ्कृतः।
संपूज्य भास्करं भक्त्या ग्रहान् भान्यथ गुह्यकान् ॥१३।१॥

आचार्य स्नान करके, अलङ्कार धारण करके, शुद्ध मन से एकान्त और पवित्र स्थान में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, अश्विनी, भरणी और गुह्यक, यक्ष, रक्ष, पिशाच, किन्नर, किंपुरुष आदि की भक्ति सहित पूजा करके······।

यहाँ सिद्ध, विद्याधर और गुह्यक आदिकों की बातों के लिखने से स्पष्ट है कि मयासुर कितने अन्धविश्वासों में फंसा है।

ज्योतिषज्ञ आचार्य के लिए मयासुर का यह आदेश है कि भक्ति से सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, अश्विनी, भरणी आदि नक्षत्रों तथा गुह्यकों की पूजा करें। यह अवैदिक है तथा अविद्वानों का कर्म है। इसके सम्बन्ध में महर्षि लिखते हैं—और जब किसी ग्रहग्रस्त

ग्रहरूप ज्योतिर्विदाभास के पास जाके वे कहते हैं हे महाराज इसको क्या है तब वे कहते हैं कि इस पर सूर्यादि क्रूर ग्रह चढ़े हैं। जो तुम इनकी शान्ति, पाठ, पूजा, दान कराओ तो इसको सुख हो जाये नहीं तो बहुत पीड़ित होकर मर जाये तो भी आश्चर्य नहीं।"

उत्तर—कहिये ज्योतिर्वित्। जैसी यह पृथिवी जड़ है वैसे ही सूर्यादि लोक हैं वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते! क्या ये चेतन हैं जो क्रोधित होके दुःख और शान्त होके सुख दे सकें।

प्रश्न—जो यह संसार में राजा, प्रजा, सुखी-दुःखी हो रहे हैं यह ग्रहों का फल नहीं?

उत्तर—नहीं ये सब पाप-पुण्यों के फल हैं।

३०—**पितरसम्बन्धी पौराणिक कल्पना**—महर्षि ने लिखा है कि ज्ञानियों को पितर कहा जाता है इसके विरुद्ध आधुनिक सूर्यसिद्धान्तकार का कहना है कि पृथिवी पर रहने वाले मनुष्य मरकर चन्द्र पर पहुँच जाते हैं, वे ही पितर हैं 'पितरः शशिगाः' कहकर १२वें अ० ७४ श्लोक में लिखा है।

३१—**मृतक श्राद्ध का कथन**—पितरों का निवास चन्द्र लिखकर उनके लिए श्राद्ध कब उपयुक्त रहता है इसका विचार करके विधान किया है। साथ में फलश्रुति भी है—

तुलादिषडशीत्यह्नां षडशीतिमुखं क्रमात्।
तच्चतुष्टयमेव स्याद् द्विस्वभावेषु राशिषु॥
षड्विंशे धनुषो भागे द्वाविंशे तिमिनस्य च।
मिथुनाष्टादशे भागे कन्यायास्तु चतुर्दशः॥
ततः शेषाणि कन्यायाः यान्यहानि तु षोडशः।
क्रतुभिस्तानि तुल्यानि पितॄणां दत्तमक्षयम्॥१४।४-६॥

अर्थ—तुला संक्रान्ति से छयालीस दिनों का षडशीतिमुख क्रम से

होता है। यह चार हैं और द्विस्वभाव राशियों में होता है। धनुराशि के २६वें अंश, मीन राशि के २२वें अंश, मिथुन राशि के १८वें अंश, और कन्या राशि के शेष १६ दिन यज्ञ-काल के समान हैं। इसमें पितरों का श्राद्धादि कर्म करने से अक्षय फल मिलता है।

वर्ष के ३६० दिन होते हैं इसी प्रकार एक वृत्त की १२ राशियां हैं। एक-एक राशि के ३० अंश होते हैं। स्थूल गणना से ३६० दिनों में सूर्य ३६० अंशों को पूर्ण करता है। तुला राशि से आरम्भ करके ८६ दिन एक षडशीति मुख है ऐसे चार हैं। प्रथम षडशीति मुख धनु राशि के २६ अंश तक, वहां से द्वितीय षडशीति मुख आरम्भ करके मीन राशि के २२ अंश तक, आगे तृतीय आरम्भ करके मिथुन राशि के १८ अंश तक समाप्त होता है। १९वें अंश से आरम्भ करके चतुर्थ षडशीति मुख कन्या राशि के १४ अंश तक है। कन्या राशि में १६ अंश शेष हैं। उत्तर भारत में पूर्णिमान्त मास के अनुसार आश्विन कृष्ण पक्ष में दक्षिण भारत में अमावस्यान्त मासानुसार भाद्रपद कृष्ण पक्ष में पितृपक्ष माना जाता है। सूर्य जब कन्या राशि के इन १६ अंशों में रहता है तब सूर्य को कन्या राशिगत कहा जाता है। यह विकृत होकर कनागत कहा जाता है। मयासुर का कथन है कि इस समय पितरों को श्राद्ध करना अक्षय फल को देता है। इसी प्रकार ११ वें अध्याय के १८ वें श्लोक में कहा है कि—

स्नानदानजपश्राद्धव्रतहोमादिकर्मभिः।
प्राप्यते सुमहच्छ्रेयस्तत्कालज्ञानतस्तदा॥

प्रातःकाल में.........श्राद्ध आदि कर्म करने से महान् पुण्य फल होता है।

मृतक पितरों को श्राद्ध करना यह वेदों के विरुद्ध है। वेदों में ऐसा नहीं है यह महर्षि का मन्तव्य है। जिसमें मृतक श्राद्ध इस रूप में हो

उसको महर्षि नहीं मान सकते । मृतक पितरों को श्राद्ध कब करना और उससे क्या लाभ होता है इसका इतना सुस्पष्ट लेख है कि इसमें ननुनच करने का अवसर नहीं है । केवल श्राद्ध मात्र करने का नहीं अपितु उसको विज्ञान सम्मत सिद्ध करने का भी प्रयत्न किया गया है । स्वामी जी ने गरुड़ पुराण के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं वे सब इस के सम्बन्ध में भी जानें । यह गरुड़ पुराण के लेख से किसी प्रकार कम नहीं है । इसलिए आधुनिक सूर्यसिद्धान्त मनुष्यों को विषसम्पृक्तान्न के समान त्याज्य है ।

३२—**ज्यौतिषविद्या से अनार्ष पापनाश आदि फल**—ज्योतिष जानने का फल है—

एतत्ते परमाख्यातं रहस्यं परमाद्भुतम् ।
ब्रह्मै तत् परमं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥
दिव्यं चार्क्षं ग्रहाणां च दर्शितं ज्ञानमुत्तमम् ।
विज्ञायार्कादि लोकेषु स्थानं प्राप्नोति शाश्वतम् ॥१४।२२,२३॥
ग्रहनक्षत्रचरितं ज्ञात्वा गोलं च तत्त्वतः ।
ग्रहलोकमवाप्नोति पर्यायेणात्मवान्नरः ॥१३।२५॥ अद्भुत

रहस्यमय उद्भूत इस शास्त्र को तुझे बतलाया है । यह स्पष्ट है और सब पापों का नाश करने वाला है । दिव्यनाशक और ग्रहों का उत्तम ज्ञान दिखाया । इसको जानकर सूर्यादि लोकों में शाश्वत स्थान को प्राप्त करता है । ग्रह, नक्षत्र चरित को तथा गोल को जानकर ग्रह लोक को क्रमशः प्राप्त करता है । आत्मा वाला होता है ।

ऊपर ज्योतिषाध्ययन का फल वर्णित है । वेद का अङ्ग होने से इसका अध्ययन करना चाहिए । इससे वेदार्थ बोध में सहायता मिलती है । यही इसका मुख्य प्रयोजन है किन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थ में इस बात का कहीं भी संकेत नहीं है । इससे अतिरिक्त इसमें इसके अध्ययन के फल का वर्णन भी पौराणिक भावुकता को लेकर है ज्योतिष के पढ़ने से

पापों का नाश होना, सूर्यादि लोकों की प्राप्ति होना, ग्रहों के लोक को प्राप्त होना क्या है और किस प्रकार है ? इस फलश्रुति का कोई आधार है ? कोई प्रमाण है ? इसमें कोई युक्ति है ? कुछ भी नहीं है। तब क्यों कही गई है ? आर्ष ग्रन्थों में ऐसी फल श्रुति नहीं हो सकती। देखिये "यथापीदमन्तरेण मन्त्रेष्वर्थप्रत्ययो न विद्यते। अर्थमप्रतीयतो नात्यन्तं स्वरसंस्कारोद्देशः। तददिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कार्त्स्न्यं स्वार्थसाधकञ्च। अथापीदमन्तरेण पदविभागो न विद्यते। अथापि याज्ञे दैवतेन बहवः प्रदेशाः भवन्ति। तदेतेनोपेक्षितव्यम्। निरुक्त ॥ यह निरुक्त शास्त्र निर्वचन शास्त्र है। शब्द का निर्वचन बतलाता है जिससे मन्त्रार्थ का ज्ञान होता है। व्याकरण का पूरक भी है। इससे मन्त्रगत पदों का सम्यक् ज्ञान होता है। यज्ञ कर्म में देवता विषयक अनेक विधियां होती हैं, उन सबको इससे जाना जाता है।

"रक्षोहागमलघ्वसंदेहार्थं व्याकरणम्" रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्। (व्या० महाभाष्यम्)

वेदों की रक्षा के लिए व्याकरण का ज्ञान है।

वर्णज्ञानं वाग्विषयो यत्र च ब्रह्म वर्त्तते।
तदर्थमिष्टबुध्यर्थं लघ्वर्थं चोपदिश्यते ॥

शिक्षाशास्त्र वर्णों का यथार्थ ज्ञान जिसमें वेद वा परमात्मा का ज्ञान प्रतिपादित है। उस ज्ञान के निमित्त तथा अभीष्ट ज्ञान स्वल्प प्रयत्न से महालाभ के लिए इस शास्त्र का विधान है। वेदों के इन अन्य अङ्गों में ऐसी फलश्रुति कहीं भी नहीं है। आर्ष ग्रन्थों में ऐसी-ऐसी अनर्थक वचनों के समान कहीं फलश्रुतियां देखने में नहीं आतीं। इससे यह आधुनिक सूर्यसिद्धान्त आर्ष नहीं, अनार्ष है।

३३—**पातों की कल्पना तथा उनका फल**—जब सूर्य और चन्द्र एक अयन में होते हैं और इनके भोगांशों का योग १२ राशियों के समान होता है तब दोनों की क्रान्तियां समान होने से वैधृति नामक पात

होता है। जब सूर्य और चन्द्र भिन्न-भिन्न अयनों में होते हैं और जब इनके भोगांशों का योग ६ राशि के समान होता है तब क्रान्तियां समान होने से व्यतीपात नामक पात होता है। इन पातों के फलों का वर्णन देखें—

तुल्यांशुजालसंपर्कात्तयोस्तु प्रवाहतः।
तद् दृक्क्रोधभवो वह्निर्लोकाभावाय जायते॥
विनाशयति पातोऽस्मिल्लोकानामसकृद्यतः।
स कृष्णो दारुणवपुर्लोहिताक्षो महोदरः।
सर्वानिष्टकरो रौद्रो भूयोभूयः प्रजायते॥११।३-५॥
आद्यन्तकालयोर्मध्यः कालो ज्ञेयोऽतिदारुणः।
प्रज्वलज्जलनाकारः सर्वकर्मसु गर्हितः॥
एकायनगतं यावदर्केन्दोर्मण्डलान्तरम्।
सम्भवस्तावदेवास्य सर्वकर्मविनाशकृत्॥
स्नान-दान-जप-श्राद्ध-व्रत-होमादिकर्मभिः।
प्राप्यते सुमहच्छ्रेयस्तत्कालज्ञानतस्तथा॥११।१६-१८॥
व्यतीपातत्रयं घोरं गण्डान्तत्रितयं तथा।
एतद्भसन्धित्रितयं सर्वकर्मसु वर्जयेत्॥११।२२॥

अर्थ—क्रान्तिसाम्य कालिक सूर्य और चन्द्र की समान किरणों के मिलने से और उनकी दृष्टिरूपी क्रोध से उत्पन्न अग्नि प्रवाह वायु से प्रज्वलित होकर संसार के लिए अशुभ फल उत्पन्न करती है। यह पात संसार को नष्ट करने वाला होता है। यह रंग में काला, कठिन शरीर वाला, लाल नेत्र वाला, बड़ा पेट वाला, सब का अशुभ करने वाला और भयङ्कर है। और बारम्बार उत्पन्न होता है। आरम्भ से अन्त तक के मध्य समय बड़ा दारुण, प्रज्वलित और अग्निस्वरूप होता है। यह सब शुभ कार्यों के लिए निन्दित है। जब तक सूर्य बिम्ब के किसी बिन्दु की क्रान्ति चन्द्र बिम्ब के किसी बिन्दु की क्रान्ति के

समान होती है तब तक सब कर्मों का नाश करने वाले इस पात की स्थिति रहती है। इस काल में स्नान, दान, जप, श्राद्ध, व्रत, होमादि कर्मों से अत्यन्त पुण्य प्राप्त होता है। और इस काल के ज्ञान से भी पुण्य होता है। तीनों व्यतीपात तीनों गण्डान्त और नक्षत्र-सन्धियां बहुत भयङ्कर होती हैं। इसलिए ये सब शुभ कामों में वर्जित हैं। अर्थात् जब ये हों तब कोई शुभ कर्म नहीं करना चाहिए।

ग्रन्थकार स्वयं ही यह "सब कल्पना ही है" ऐसा कह रहा है—पढ़ें।

तारा ग्रहाणामन्योन्यं स्यातां युद्धसमागमौ।
समागमः शशांकेन सूर्येणास्तमनं सह ।।७।१।।
भावाभावाय लोकानां कल्पनेयं प्रदर्शिता।
स्वभार्गया भवन्त्येते दूरमन्योन्यमाश्रिताः ।।७।२४।।

अर्थ—मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि आदि तारा ग्रहों का आपस में युद्ध समागम होता है (वास्तव में पात भी इसी का भेद है अतः दो श्लोक सम्पूर्ण फलित कल्पना के आधार हैं) जब तारा ग्रह चन्द्र के साथ होता है तब चन्द्रमा के साथ होता है और सूर्य के साथ होता है तब उसका अस्त कहा जाता है। लोगों के शुभाशुभ फल के लिए ग्रहों के युद्ध, समागमादि की कल्पना की गई है। यथार्थ में यह अपनी-अपनी कक्षा में भ्रमण करते हैं और दूसरे से बहुत दूर हैं। परन्तु परस्पर आश्रित अथवा बहुत निकट देख पड़ते हैं।

समीक्षा—ग्रहों की स्थिति-विशेष को पात कहा गया है। यहां द्वितीय श्लोकस्थ शब्द **'भावाभावाय लोकानां'** विशेष ध्यान से देखने योग्य है। लोगों के शुभाशुभ फल के लिये यह अध्याय लिखा गया है। इससे यह भी गतार्थ होता है कि पाताधिकार नामक अध्याय भी इसीलिए है। इसको आगे बढ़ाते हुए भास्कर ने कहा है कि—

ज्योतिः शास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते।
नूनं लग्नबलाश्रितः पुनरयं तत् स्पष्टखेटाश्रयम् ।।

ते गोलाश्रयिणोऽन्तरेण गणितं गोलोपि न ज्ञायते।
तस्माद्यो गणितं न वेत्ति स कथं गोलादिकं ज्ञास्यति ॥

अर्थ—प्राचीन आचार्य ज्योतिश्शास्त्र पढ़ने का प्रयोजन आदेश बतलाते हैं (आदेश का अर्थ शुभाशुभ फल का कथन) आदेश का आधार लग्न है। लग्न ग्रहों के स्पष्टीकरण पर है। अर्थात् ग्रहों से लग्न जाना जाता है। इसलिए जो गणित नहीं जानता वह गोलादि कैसे जानेगा ?

इसी बात को मयासुर ने बीज रूप में कह दिया है। ऊपर तुल्यांशु जालसम्पर्कात् से लेकर सर्वकर्मसु वर्जयेत् तक श्लोक पढ़िए। उनमें "तत्कालज्ञानतस्तथा" लिखा है। इसका भाव यह है कि फलित ज्योतिष में मनुष्य के लिए जो अनिष्ट बतलाए हैं वे सब स्नान, दान, जप, श्राद्धादि करने से दूर होते हैं। तथा उस समय के ज्ञानमात्र से भी वह अनिष्ट दूर हो जाता है। अर्थात् इस शास्त्र को पढ़ने का प्रयोजन फलित में बतलाये अनिष्टों को दूर करना है। यही श्रेय है। श्रेय के दो अर्थ हो सकते हैं, एक है दुःख-दूरीकारण। यह सम्भव नहीं है। क्योंकि ऋषि के लेखानुसार सुख-दुःख मनुष्यों के कर्मों का परिणाम है, ग्रह कारण नहीं। दूसरा है मुक्ति मिलना। यह भी असम्भव है क्योंकि मुक्ति का कारण ज्ञानकर्मोपासना है।

छः शास्त्रों में विचार करते हुए ग्रहों से अनिष्ट का होना, उसके लिए जप, दान, पूजा आदि करना, उससे अनिष्ट की निवृत्ति का होना अथवा ग्रहों की स्थिति-गति के ज्ञान से मुक्ति का होना, ग्रहों के कारण बन्धन वा नरक होना, ग्रहों का प्रसन्नाप्रसन्न होकर शुभाशुभ फल देना आदि कहीं एक अक्षर भी नहीं लिखा है। क्या उन विदितवेदितव्य-परापरज्ञ महर्षियों को इस ज्योतिष का ज्ञान नहीं था ? तो फिर ग्रहादिकों से शुभाशुभ फल का प्रमाण किस वेदशास्त्र में है ? जब ग्रह जड़ हैं तो वे क्रोधित वा प्रसन्न नहीं हो सकते, उनकी स्थिति विशेष

से कैसे क्रोधित वा प्रसन्न हो सकते हैं ? इस विषय में महर्षि के विचार पढ़िये ?—"वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते ।" द्वि० समु० ।।

२—"जो धनाढ्य दरिद्र प्रजा राजारङ्क होते हैं वे अपने कर्मों से ग्रहों से नहीं...इसलिए कर्म की गति सच्ची और ग्रहों की गति सुख-दुःख भोग में कारण नहीं ।" एकादश समु० ।

पात का काल भी जड़ होने से ग्रहों के समान ही क्रोधित वा प्रसन्न नहीं हो सकता । अतः सुखदुःख भी नहीं हो सकता ।

३—"कलियुग नाम काल का है । काल निष्क्रिय होने से कुछ धर्माधर्म के करने में साधक-बाधक नहीं ।" (एकादश समु०)

३४—**सब कर्मों को छोड़ने की वेदविरुद्ध मान्यता**—वेद कहता है कि—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्मलिप्यते नरे ।। यजु० ।।

जब तक जीवे तब तक वेदोक्त कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे । वेद विरुद्ध कर्म निन्दित होने से सदा ही त्याज्य हैं, विहित कर्त्तव्य होने से कभी भी नहीं छोड़ना चाहिए । मनुजी महाराज ने यही कहा है और महर्षि दयानन्द ने भी । देखिये—

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यिके ।
नानुरोधोस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि ।।

लेख विस्तृत न हो इसलिये इसकी यहां व्याख्या नहीं की जाती । विशेष देखना चाहें तीसरे समुल्लास में देखें । नीतिकारों ने भी कहा है कि 'शुभस्य शीघ्रम्' शुभकार्य शीघ्र करनें चाहिए क्योंकि आलस्या-दमृतं विषम् अर्थात् विलम्ब करने से कभी-कभी अमृत भी विष बन जाता है । महर्षि पतञ्जलि ने भी यही कहा है कि—शुभकर्मों को कभी भी नहीं छोड़ना चाहिए । "स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो

दृढ़ भूमिः।" यमनियमादि का दीर्घ काल तक निरन्तर श्रद्धापूर्वक सेवन करना मुक्तिदायक है इत्यादि। किन्तु मयासुर का मत है कि सर्वकर्मसु गर्हितः, सर्वकर्मविनाशकृत्, सर्वकर्मसु वर्जयेत् अर्थात् उस काल में कोई कर्म न करे क्योंकि वह काल सब कर्मों को नष्ट करने वाला है।

क्या काल किसी कर्म के सफलासफल होने में कारण हो सकता है? किसी शास्त्र में किसी कर्म की सफलता के लिये काल को क्या साधक-बाधक माना है? उत्तम कर्मों का निषेध क्यों? क्या उत्तम कर्मों से कभी अनिष्ट हो सकता है? क्या उत्तम कर्म निष्फल हो सकता है? तब उत्तम कर्मों का विरोध क्यों? करना ही था तो, दुष्कर्मों का विरोध करता कि चोरी-जारी मत करो, झूठ, छलकपट मत करो। मयासुर ने इस पुस्तक द्वारा वेदविरुद्ध मत फैलाया। मयासुर ने एक स्थान पर सब कर्मों को छोड़ने को कहा। दूसरे स्थान पर स्नान-दान-जप-श्राद्ध-व्रत होमादि कर्मों से महान् श्रेय मिलना भी कहा है। यह वदतो व्याघात हुआ। इन दोनों में से कौन सी बात माननीय होगी? वास्तव में मयासुर दीर्घदृष्टि नहीं था। यदि होता तो यह लिखता कि स्नान दानादि को छोड़कर अन्य किसी कार्य को न करे। क्या दान, व्रत, होमादि कर्म कभी छोड़ने योग्य हैं? कभी नहीं। ये सदा शुभ कर्म हैं। इनको सदा करना ही चाहिये। इनसे सदा पुण्य फल होता है। मृतक श्राद्ध वेदविरुद्ध होने से पाप है।

ऊपर के भावाभाव श्लोकानुसार स्वयं मयासुर का कहना है कि—ग्रहादि परस्पर बहुत दूर हैं। वे न कभी एक दूसरे से मिलते हैं न युद्ध करते हैं, न हारते हैं, न जीतते हैं, न अस्त होते हैं, न उदित होते हैं, न वक्री होते हैं, न मार्गी होते हैं, न घटते और न कभी बढ़ते हैं। इसी प्रकार वे न कभी सुखी होते न कभी दुःखी, न कभी सबल होते, न कभी दुर्बल होते हैं। परन्तु हम शुभाशुभ फल के लिये इस प्रकार

की कल्पनायें कर लेते हैं। वास्तव में इस बात के द्वारा जहाँ मयासुर ने फलित का बीज बो दिया वहाँ विद्वानों के समक्ष अपनी कल्पना भी स्वयं व्यक्त कर दी। जैसे ग्रहों का समागमादि कल्पित है वैसे फलित भी कल्पित है। इसका आधार नहीं है।

३५—संक्रान्ति काल को पुण्य मानना अनार्ष है—'संक्रान्ति', सूर्य, चन्द्र और पृथिवी की स्थिति-गति विशेष, काल विशेष होने से शुभाशुभ नहीं हो सकती। क्योंकि ग्रह जड़ हैं और काल भी जड़। इसके विरुद्ध मयासुर ने संक्रान्ति के काल को पुण्य काल माना है। "संक्रान्ते-पुण्यकालता" ॥ १४।३ ॥

अर्कमानकलाः षष्ट्या गुणिता भुक्तिभाजिताः।
तदर्धनाड्यः संक्रान्तेरर्वाक् पुण्यं तथा परे॥ १४।११॥

संक्रान्ति का काल ही नहीं अपितु कुछ पूर्व कुछ पश्चात् का काल भी पुण्यदायक होता है। काल जड़ एवं निष्क्रिय होने से मयासुर का मत महर्षि दयानन्द को मान्य नहीं हो सकता।

३६—वार, मासादि की उत्पत्ति—भारतीय इतिहास के मध्यकाल में जिस समय भारत में ज्योतिर्विद्या लुप्त हो गई और उसके स्थान पर फलित की स्थापना होने लगी, उस समय ग्रहों का भी ज्ञान लुप्त होने लगा। पृथिवी को स्थिर माना जाने लगा। ग्रहोपग्रहनक्षत्रों का भेद लुप्त हुआ। हमारे देश में वर्तमान में उपलब्ध समस्त ज्योतिष ग्रन्थ इस मध्यकाल के निर्मित हैं। इसलिये इनमें ज्योतिष क्या है, क्यों इसको वेद का अङ्ग माना गया है, इसका क्षेत्र, सीमा क्या है आदि विषयक ज्ञान नहीं देखा जाता। वास्तव में ज्योतिष सम्बन्धी विस्तृत ज्ञान से ये ग्रन्थ शून्य हैं। जो हैं वे निर्भान्त नहीं हैं। इसी काल की देन मयासुर के नाम से यह वर्तमान सूर्यसिद्धान्त है। सिद्धान्त ग्रन्थ होने से इसमें फलित का विशेष वर्णन नहीं किया जा सकता था। इसीलिये इसके लेखक ने जितना संभव हो सका फलित के मूल

सूत्रों से इस पुस्तक को ओतप्रोत कर दिया। वारों का भी ऐसा ही एक विषय है। वार सात ही क्यों हैं इसका एक ही समाधान है कि जिस समय हमारे ज्योतिषियों को केवल सात ग्रहों का ज्ञान रह गया था, उसी समय की यह कल्पना है। उसी समय का यह घड़ा हुआ है। वारों का संकेत वा वर्णन अथवा व्यवहार हमारे वेदों में ब्राह्मणग्रन्थों में, उपवेद, चरक, सुश्रुत में, उपनिषदों में, वेद के छः अङ्गों में, उपाङ्गों में, मनुस्मृति, रामायण और महाभारत में, गीता में कहीं पर भी नाममात्र के लिये भी नहीं है। कहीं भी इसका उपयोग नहीं हुआ है। यज्ञादि में वर्ष, ऋतु, मास, क्ष, तिथि, दिन सूर्योदयास्तादि का व्यवहार तो है। चरकादि में जहाँ पक्ष दिन का वहुत व्यवहार हुआ है किन्तु वार का नाम नहीं दीखता। वास्तव में यह फलित के लिये ही हुआ है। इसके सम्बन्ध में भारतीय ज्योतिष् वा उसके इतिहास के अद्वितीय विद्वान् शंकर बालकृष्ण दीक्षित लिखते हैं कि "सात वारों के क्रम की उत्पत्ति इस प्रकार है:—ग्रह पृथिवी के चारों ओर घूमते हैं सबसे ऊपर शनि और उससे नीचे क्रमश: गुरु, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्रमा है। अहोरात्र के होरा नामक २४ विभाग माने हैं। ये सातों ग्रह क्रमश: उनके अधिप हैं। अहोरात्र में इनकी तीन आवृत्ति समाप्त हो जाने के बाद ३ होराएं बच जाती हैं। इस प्रकार चतुर्थ ग्रह दितीय दिन की प्रथम होरा का स्वामी होता है। प्रथम दिन प्रथम होरा का स्वामी यदि शनि होता है तो द्वितीय दिन प्रथम प्रथम होरे का स्वामी रवि, और तृतीय दिन चन्द्रमा होता है। दिन का प्रथम होरा का स्वामी ही उस वार का स्वामी माना जाता है। इस प्रकार शनि, रवि, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु और शुक्र क्रमशः वार होते हैं अर्थात् पृथिवी के चारों ओर घूमने वाले ग्रहों में सबसे ऊपर का ग्रह वाराधिप होने के बाद उसके नीचे का चतुर्थ ग्रह वाराधिप होता है। इसी प्रकार आगे भी चतुर्थ ग्रह वाराधिप हुआ करते हैं। इसके विषय में वर्त्तमान सूर्यसिद्धान्त में लिखा है कि—

मन्दादधः क्रमेण स्युश्चतुर्थाः दिवसाधिपाः ॥ १२।७८ ॥
होरेशाः सूर्यतनयादधोऽधः क्रमशस्तथा ॥ १२।७९ ॥

प्रथम आर्यभट्ट ने ऐसा ही लिखा है—

शीघ्रक्रमात् चतुर्थाः दिनपाः । कालक्रियापाद १६

ज्योतिष ग्रन्थों में दिन के होरात्मक २४ भाग मानने की पद्धति केवल वारोत्पत्ति और फलित ज्योतिष के सम्बन्ध में है। होरा नामक कालमान ज्योतिष के सिद्धान्त ग्रन्थों में बतलाए हुए काल मानों में नहीं है। किसी वैदिक ग्रन्थ में नहीं है। यह शब्द मूलतः संस्कृत का नहीं है। इसकी व्युत्पत्ति के विषय में वराहमिहिर ने लिखा कि अहोरात्र शब्द के आदि अन्त्य अक्षरों को छोड़ देने से होरा शब्द बना है। परन्तु इससे समाधान नहीं होता…। भारतीय ज्योतिष् अनुवाद पृ० १९४, १९५ ॥ 'वारों का प्रचार मेषादि राशियों से लगभग ५०० वर्ष पूर्व अर्थात् शकपूर्व १००० के आसपास हुआ होगा।'…पृष्ठ ५१८ वारों की उत्पत्ति हमारे देश में नहीं हुई है क्योंकि उनकी उत्पत्ति का सम्बन्ध होरा नामक पदार्थ से है जो कि हमारे देश का नहीं है। वही पृ० ५१९ इस विषय में इससे अधिक विस्तार से पढ़ना हो तो पृ० ५१७ से ५२० तक देखें विस्तार भय से हम उसको उद्धृत नहीं कर सकते। इसी प्रकार फलित ज्योतिष् के निमित्त ही चैत्रादि मासों की कल्पना हुई है। इससे पूर्व वैदिक परम्परा में मधुमाधव का ही व्यवहार था। चरकादि ग्रन्थों में यही है चैत्रादि कहीं नहीं है।

३७—देवी-वताओं की पौराणिक कल्पनाएँ—

भौमादयोऽल्पमूर्तित्वाच्छीघ्रमन्दोच्चसंज्ञकैः ।
देवतैरपकृष्यन्ते सुदूरमतिवेगिताः ॥१०॥
अदृश्यरूपा कालस्य मूर्तयो भगणाश्रिताः ।
शीघ्रमन्दोच्च पाताख्या ग्रहाणां गतिहेतवः ॥१॥
तद्वातरश्मिभिर्बद्धास्तैः सव्येतरपाणिभिः ।
प्राक् पश्चादपकृष्यन्ते यथासन्नं स्वदिङ्मुखम् ॥२॥

अतोधनर्णं सुमहत्तेषां गतिवशाद्भवेत् ।
आकृष्यमाणास्तैरेवं व्योम्नि यान्त्यनिलाहताः ॥११॥

शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पातनामक काल की मूर्तियां जो आंख से देखी नहीं जा सकतीं और जो स्वयं क्रान्ति वृत्त पर चक्कर लगाती हैं ग्रहों की गति के कारण हैं। यह मूर्तियां अपने दाहिने और बाएँ हाथों से पूर्व और पश्चिम की ओर जैसी दूरी हो, उसके अनुसार ग्रहों को जो उन मूर्तियों से वायु रूपी रस्सियों से बंधे हुए हैं अपनी ओर खींच लेती हैं। मंगलादि ग्रहों के मण्डल बहुत छोटे हैं। इसलिए इनके शीघ्रोच्च, मन्दोच्च देवता इनको बहुत दूर तक बड़े वेग से खींच ले जाती हैं। इसलिए इनमें धन और ऋण संस्कार इनकी गति के कारण बहुत करना पड़ता है। इस प्रकार यह ग्रह अपने शीघ्रोच्च, मन्दोच्च देवताओं से खिंचे हुए और प्रवह वायु का धक्का खाते हुए आकाश में चलते हैं।

समीक्षा—यदि पौराणिक देवी-देवताओं का यह विश्वास न होता तो ऐसी निराधार कल्पना नहीं करते और न आकर्षण सिद्धान्त को भूलते। देवी-देवताओं की यह कल्पना पुराणों की देन है। यह सत्य युग की नहीं हो सकती।

३८—एक अनार्ष कल्पना—

तुङ्गबीजसमायुक्तं गोलयन्त्रं प्रसाधयेत् ।
गोप्यमेतत्प्रकाशोक्तं सर्वगम्यं भवेदिह ॥१३।१७॥

इस गोलयन्त्र को पारे के संयोग से ऐसा बनावे कि वह अपने आप घूमे उसको गुप्त रखना चाहिये। प्रकाशित करने से सबको ज्ञात होगा।

समीक्षा—यंत्र का यह कथन भी अस्पष्ट है। 'अब तक किसी को समझ में आया हो' ऐसा ज्ञात नहीं है। वास्तव में ग्रन्थकर्त्ता को ही पता नहीं था इसलिए कहा कि प्रकाशित करने से सबको ज्ञात होगा। यह अविद्वान् का लक्षण है। हम पूछते हैं कि यह सारा ग्रन्थ क्या सबके लिये प्रकाशित नहीं किया ? सब ग्रन्थ को प्रकाशित करना सब

यन्त्रों को करना सबके लिए नहीं तो किस के लिए किया ? क्या सबके लिए ज्ञान का होना आपत्तिजनक है ? यदि आपत्तिजनक है तो आपने इस ग्रन्थ को प्रकाशित क्यों किया ? जिनके लिए इस पूर्ण ग्रन्थ को प्रकाशित किया, क्या उनके लिये भी इस यन्त्र को स्पष्ट नहीं बताया जा सकता था ? इस ग्रन्थ के पढ़ने वाले क्या सब अयोग्य ही हैं ? कोई योग्य नहीं ? विद्या स्वार्थ तथा परार्थ होती है। जो स्वार्थ परार्थ नहीं है उसका क्या उपयोग ? वास्तव में यह ग्रन्थ किसी परोपकारी विद्वान् का भी बनाया नहीं हो सकता अपितु क्षुद्राशय, दम्भी अल्पबुद्धि प्रकल्पित है। किसी आर्ष ग्रन्थ में क्या किसी विद्वान् की कृति में भी ऐसी बात हो सकती है ? इसीलिए ऐसे ग्रन्थ को महर्षि प्रमाण नहीं मान सकते।

३९—**आधुनिक सूर्यसिद्धान्त आर्ष नहीं**—यह ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त के नाम से प्रचलित है। इसकी प्रकल्पित कल्पनाओं की इस लेख में चर्चा की है। इसका लेखक मयासुर है। यह ग्रन्थावलोकन से विदित है। कहीं कहीं इसको म्लेच्छावतार भी लिखा है। असुर का अर्थ क्या हो सकता है यह लेख को आद्योपान्त पढ़कर विज्ञपाठक स्वयं कर लेंगे। वास्तव में इसका लेखक कोई ऋषि वा योगी नहीं, इसीलिए यह ग्रन्थ आर्ष वा प्रामाणिक नहीं हो सकता।

ऐसे ही ग्रन्थों को दृष्टि में रखकर महर्षि ने लिखा है कि अन्य नास्तिक कृत अमर कोशादि···कपोल-कल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं, उनको न पढ़ें न पढ़ावें।

४०—**आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में ग्रीक भाषा के शब्द**—आधुनिक सूर्यसिद्धान्त में होरा आदि शब्द कुछ ऐसे हैं जो संस्कृत भाषा के नहीं हैं। इनके विषय में विद्वानों का विचार है कि ये ग्रीक भाषा के हैं। इनसे स्पष्ट है कि यह प्राचीन ग्रन्थ नहीं है। प्राचीन काल में जिस समय ग्रीक भाषा ही उत्पन्न नहीं हुई थी उस समय परवर्ती ग्रीक

भाषा के शब्द पूर्ववर्ती ग्रन्थ में कैसे प्रयुक्त हुए ? इसका समाधान स्पष्ट करता है कि यह आधुनिक है प्राचीन नहीं।

४१—आधुनिक सूर्यसिद्धान्त प्राचीन नहीं—इसके रचनाकाल के संबंध में कुछ विचार करते हैं।

ग्रन्थ की रचना कब हुई यह ग्रन्थ में कहीं भी स्पष्ट रूप से लिखा नहीं है। इसके सम्बन्ध में अनुमान करने के लिए कुछ श्लोक निम्न उद्धृत किये जाते हैं—

१. अल्पावशिष्टे तु कृते मयनाममहासुरः ॥ १ । २ ॥

२. आराधयन् विवस्वन्तं तपस्तेपे सुदुस्तरम् ॥ १ । ३ ॥

३. अष्टाविंशाद् युगादस्माद् यातमेतत्कृतं युगं।

अतः कालं प्रसंख्याय संख्यामेकत्र पिण्डयेत् ॥ १ । २३ ॥

कृतयुग के कुछ शेष रहने पर मय नाम के असुर ने सूर्य की आराधना करते हुए कठिन तप किया।

अट्ठाईसवें महायुग में से कृत युग समाप्त हुआ। इन श्लोकों को देखने से प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ कृत युग के अन्त में लिखा या कहा गया।

त्रेता के १२९६००० तथा द्वापर के ८६४००० और कलि के ५०७५ सब मिलकर २१६५०७५ इक्कीस लक्ष ६५ सहस्र ७५ वर्ष होते हैं। इसका अर्थ यह होगा कि इस ग्रन्थ की रचना होकर २१ लक्ष ६५ सहस्र वर्ष हुए। यदि वास्तव में उस समय लिखा होता तो इतना ही प्राचीन होता। किन्तु यह सरासर शतप्रति कल्पना प्रसूत मिथ्या है। उस समय का एक भी लक्षण इस ग्रन्थ में नहीं मिलता।

प्रश्न—पुस्तक में ही स्पष्ट लिखा है कि कृतयुग को गत मानकर ग्रह स्पष्टीकरण करें। यदि उस समय का यह ग्रन्थ न होता तो उस समय के ग्रह स्पष्टीकरण से पश्चात् वालों का क्या प्रयोजन था इसलिये यह कृतयुगान्त का ही है। उत्तर—पांच परीक्षाओं से जो सत्य सिद्ध हो वही प्रामाणिक होगा अन्य नहीं।

अन्तःसाक्ष्य वा बाह्यसाक्ष्य से यह सत्य सिद्ध नहीं होता इसके निम्न कारण हैं—

१. वासुदेव, संकर्षण और अनिरुद्ध क्रमशः श्रीकृष्ण, बलदेव और श्रीकृष्ण के पौत्र के नाम हैं। इस ग्रन्थ में वासुदेव से सृष्टि उत्पत्ति लिखी है। ये व्यक्ति महाभारत कालीन हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है।

प्रश्न—वासुदेव आदि प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार आदि के नाम हैं, महाभारतकालीन व्यक्तियों के नाम नहीं है।

उत्तर—किस वेद, शास्त्र वा उपनिषदादि में वासुदेव का अर्थ ईश्वर है ? उन अर्थों में यह शब्द पर्यायवाची के रूप में भी कहीं आर्ष ग्रन्थों में प्रयुक्त हुए हैं ? यदि नहीं तो हमारा कथन सत्य हुआ।

२. कृत युग के अन्त में केवल अद्वितीय, निराकार, वेदोक्त ईश्वर की ही उपासना होती थी। किन्तु इस पुस्तक में सूर्य की आराधना ग्रहों, नक्षत्रों, गुह्यकादि जड़ादिक पूजा देव, यक्ष, सिद्ध आदि की कल्पना भरी है। कृत युग में यह कहां थी ?

३. पृथिवी को स्थिर तथा सूर्य को चल मानना पौराणिक कल्पना की देन है। कृतयुग की यह बात नहीं हो सकती।

४. मृतक श्राद्ध का विधान उस समय का नहीं हो सकता।

५. वारों का उस समय व्यवहार नहीं था। यह तो फलित के लिए ही कल्पित हुआ है। फलित के अतिरिक्त इसका किसी आर्षग्रन्थ में व्यवहार हुआ हो तो बतलावें।

६. केन्द्र, होरा, वार, लिप्ता आदि संस्कृत के नहीं माने जाते हैं। ये शब्द वाल्मीकिरामायण, महाभारत वा अमर कोशादि में भी नहीं हैं। ऐसा ही उदयनारायण ने मयासुर कृत इसी पुस्तक की भूमिका में लिखा है। उस समय संस्कृत भाषा से भिन्न कोई भाषा थी ही नहीं तो ये शब्द भी कहां होंगे।

७. चैत्रादिमासों की कल्पना भी वैदिक नहीं अवैदिक है। यह भी

फलित ज्योतिष् के लिये ही हुई है। प्राचीन वैदिक साहित्य में चैत्रादि का नाम नहीं आता। मधुमाधव आदि का ही आता है। इस पुस्तक में चैत्रादि ही व्यवहृत हैं।

८. पापनाशन का विचार मध्यकालीन वा पौराणिक है। इससे यह ग्रन्थ भी प्रभावित हुए विना नहीं रह सका।

९. मृत मनुष्य-पितर चन्द्रमा के पृष्ठ भाग में रहते हैं, यह पौराणिक कल्पना गप्प है। जो इस पुस्तक में भी है।

१०. जड़-सूर्य से वार्तालाप करना, वर देना, विद्या दान देना आदि मिथ्या संस्कार महाभारत काल के पश्चात् के हैं।

११. इसमें अध्ययन जैसे फल श्रुति है वैसा महाभारत से प्राचीन किसी ग्रन्थ में नहीं देखी जाती है।

१२. पातादि के फलों की कल्पना फलित के अन्धविश्वासों की देन है, जो कि पौराणिक अन्धविश्वास है।

१३. ग्रहणकाल को पुण्य मानना यह सत्ययुग का नहीं हो सकता।

१४. सृष्टि-उत्पत्ति के क्रम में लिखित सृष्टि क्रम विरुद्ध बातें—गरुड़ पुराणोक्त के समान अथवा भविष्य पुराणोक्त सम हैं। जलप्लवादि भी वैसा ही है। यह महाभारत काल के पश्चात् की देन है—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नाऽनाहिताग्निर्नाऽविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

के समय की नहीं है।

१५. इस पुस्तक में इस देश का नाम भारत आया है, यह शब्द दुष्यन्त के पुत्र राजा भरत के नाम से ही प्रारम्भ हुआ। यह ऐतिहासिकों की धारणा है। क्या यह भरत कृत युग में हुआ था? जहाँ तक मुझे ज्ञात है यह कृत युग में नहीं हुआ।

इत्यादि अनेक कारणों से अन्तः तथा बाह्य साक्ष्यों से कृत युग का क्या महाभारतकालीन भी सिद्ध नहीं हो सकता।

यह ग्रन्थ कब बना निश्चित वर्ष ज्ञात नहीं किन्तु भट्टोत्पल जो शक ८८८ में हुआ, उसके समय में यह नहीं हुआ होगा। होता तो इस का उल्लेख करता किन्तु भट्टोत्पल ने जिस सूर्यसिद्धान्त की चर्चा की है वह यह नहीं है। उसके श्लोक इसमें नहीं मिलते। इससे सिद्ध है कि भट्टोत्पल के समय में जो था वह इससे भिन्न था। भास्कराचार्य जो शक १०३६ में हुआ है उन्होंने सूर्यसिद्धान्त के नाम से जो श्लोक लिखे हैं वे इसमें मिलते हैं। इससे सिद्ध होता है कि जो सूर्यसिद्धान्त वराहमिहिर के समय दुष्प्राप्य हुआ था वह भट्टोत्पल तक भी रहा। उसी मध्य में यह ग्रन्थ उसी नाम से बना। लोगों ने उसकी दुर्लभता की स्थिति में इसी को सूर्यसिद्धान्त समझा। यह ग्रन्थ व्यवहार में आया। भास्कराचार्य के समय तक यह प्रसिद्ध हो गया। और जो मिहिर को, उत्पल को कठिनाई से प्राप्त था वह अब सदा के लिए लुप्त हुआ। उसके स्थान पर उसी के नाम से यही मान्य हो गया।

मध्यकालीनाचार्य जो अनेक मिथ्याभ्रान्त परम्पराओं में संलग्न थे वे इसकी नीरक्षीर विवेचना नहीं कर सके। इसलिए यही ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त माना जा रहा है। परमर्षि देवदयानन्द के दिव्य ज्ञान से परिदृष्ट ५ परीक्षाओं से यह ग्रन्थ आद्य सूर्यसिद्धान्त सिद्ध नहीं होता। अतः महर्षि का अभिमत सूर्यसिद्धान्त यह नहीं है।

इस लेख में ४१ विषयों की संक्षेप में समीक्षा की है। 'सूर्यसिद्धांत समीक्षा' ग्रन्थ में अधिक विस्तार से लिखूँगा। यदि कोई व्यक्ति इस ग्रन्थ को इस लेख के पढ़ने के पश्चात् भी ऋषि दयानन्द का अभिमत करे तो मेरे आक्षेपों का समाधान करने की कृपा करे। इस प्रश्न का उत्तर भी देवे कि महर्षि ने इसके वचनों को कहीं उद्धृत क्यों नहीं किये ?

मैं विद्वज्जनों से अनुरोध करूँगा कि हठ, दुराग्रह और अभिमान छोड़कर निष्पक्ष हो सत्य को स्वीकार करके घोषणा करें, जिससे आर्य जगत् में फैली भ्रान्ति दूर हो। इति शम्।

सृष्टि-संवत् विषय में—

विभिन्न भ्रान्तियाँ और उनका निराकरण

—राजवीर शास्त्री

श्री आचार्य वैद्यनाथ का सार्वदेशिक पत्रों में 'संवत् और वेदोत्पत्ति काल' नामक लेखमाला निकली है। उसमें उन्होंने प्रकरण-विरुद्ध, परस्पर-विरुद्ध, सृष्टि-विरुद्ध, शास्त्र-विरुद्ध तथा महर्षि-विरुद्ध बातों का उल्लेख करके महर्षि की मान्यता को मानने वालों को लालबुझक्कड़-वादी आदि कहकर कोसा है। हम अपशब्दों का उत्तर अपशब्दों से नहीं देना चाहते क्योंकि अपशब्दों का प्रयोग युक्ति व प्रमाण के अभाव में मनुष्य करता है। इसमें विद्वानों की शोभा नहीं है। परन्तु आचार्य जी ने न तो महर्षि के लेख पर विचार किया है, और न हमारी बातों का उत्तर ही दे पाए हैं। देखिए उनके लेख में निम्न बातों की उपेक्षा की गई है—

(१) सृष्टि और प्रलय दिन-रात की भांति आते-जाते रहते हैं। जब भी सृष्टि के समय का अन्तिम क्षण समाप्त होगा, तभी से प्रलय का क्षण प्रारम्भ हो जायेगा। कालगणना में इसको कदापि नहीं छोड़ा जा सकता। ऐसा कभी नहीं होता है कि सृष्टि का समय या प्रलय का समय समाप्त होने पर सृष्टि, या प्रलय का प्रारम्भ न होता हो।

(२) सृष्टि-संवत् की परिगणना करने वालों को सृष्टि और प्रलय का लक्षण अवश्य मानना पड़ेगा। बिना सृष्टि-प्रलय की परिभाषा को बताए वे एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते हैं। सृष्टि-प्रलय के लक्षण

के अनुसार प्रथमपरमाणु के संयोग से ही सृष्टि का समय प्रारम्भ हो जाता है और जब से वियोग होना प्रारम्भ होता है अर्थात् जगत् अपने कारण में लीन होने लगता है, उस प्रथम क्षण से ही प्रलय का समय प्रारम्भ हो जाता है।

(३) सृष्टि-रचना में जो क्रम होता है प्रलय में ठीक इससे विपरीत होता है। अर्थात् प्रथम परमाणु-संयोग सृष्टि-रचना में प्रथम घटक है और मनुष्य की रचना अन्तिम घटक है। परन्तु प्रलय काल में (कारण लीन दशा में) मनुष्य-प्रलय प्रथम और परमाणु-वियोग सब से अन्त में होता है।

(४) सृष्टि और प्रलय सहसैव नहीं हो सकते। सृष्टि-रचना तथा सृष्टि-प्रलय में समय की आवश्यकता होती है। सृष्टि-रचना में जो भी समय लगता है, वह सृष्टि का और प्रलय में (स्थूल से सूक्ष्म में लीन होने में) जो समय लगेगा, वह प्रलय का काल है। सृष्टि और प्रलय के काल की गणना करने वालों को इन बातों को ध्यान में रखकर अपनी-अपनी कल्पित मान्यताओं पर विचार करना चाहिए।

(५) सृष्टि और प्रलय का एक-एक हजार युगी का समय समान है! अतः सृष्टि का समय प्रलय में और प्रलय का समय सृष्टि में नहीं गिनना चाहिए।

आचार्य वैद्यनाथ की मान्यता में परस्पर विरोध—

आचार्य जी ने वैदिक युग और आदि मानव पुस्तक में ऋग्वेद के १०। ६७। १ मन्त्र का प्रमाण देकर यह माना है कि सृष्टि का तीन चतुर्युगी का समय सृष्टि के प्रारम्भ में तथा तीन चतुर्युगी का समय सृष्टि के अन्त में लगता है। और इस लेखमाला में उसके विपरीत १५ सन्धि काल मानकर सृष्टि-संवत् पर लेख लिखने लगे हैं। क्या आचार्य जी बताने का कष्ट करेंगे कि आपकी कौन सी मान्यता सत्य तथा वेदादि शास्त्र सम्मत है? क्या १५ सन्धियां १४ मन्वन्तर तथा तीन-

तीन चतुर्युगियां आदि-अन्त में, इन सबको जोड़कर सृष्टि-संवत् की मान्यता सत्य हो सकती है ? क्या पहले जो वेद का प्रमाण देकर आपने बात लिखी थी, वह अब असत्य होने से आपने छोड़ दी ? आप किसी बात को मानकर छोड़ देवें, तब तो कोई बात नहीं। क्योंकि मनुष्य अल्पज्ञ है। परन्तु सामवेद के भाष्यकार यदि वेद मन्त्र का प्रमाण देकर कोई बात कहें, और फिर बदल जाएँ, तो क्या शाश्वत सत्य वेद को झूठा मानें अथवा आपको ? लेख लिखने से प्रथम कम से कम अपनी मान्यता पर तो विचार कर लेते। धन्य है आपकी मिथ्या भाष्यकारिता तथा पाण्डित्यगर्वित दम्भ को। महीधरादि के भाष्यों का तो खण्डन महर्षि कर गए परन्तु महर्षि की छत्र-छाया में बैठकर आप सदृश के वेदभाष्यों के खण्डनार्थ क्या परमेश्वर को दूसरा महर्षि भेजना पड़ेगा ?

आचार्य वैद्यनाथ का **महर्षि दयानन्द से विरोध**—

(क) महर्षि लिखते हैं—'एकस्मिन् ब्राह्मदिने १४ चतुर्दश भुक्त-भोगा भवन्ति' (ऋ० भू०) अर्थात् एक ब्राह्मदिन में १४ मन्वन्तरों का भुक्तभोग काल है। परन्तु आप लिखते हैं—'वेद के आधार पर सृष्टि का सम्पूर्ण भोग काल १ सहस्र चतुर्युगियों का होता है।' इस आपकी मान्यता का वेद में तो भोगकाल कहीं नहीं लिखा है, परन्तु आपने अनधिकार चेष्टावश वेद से अपनी मान्यता लिख दी है। और जब तक मनुष्य-रचना नहीं हुई है, उस सृष्टि के समय को कैसे भोगकाल माना जा सकता है ?

(ख) महर्षि दयानन्द सृष्टि का समय प्रथम परमाणु संयोग मानते हैं। मनुष्य-रचना तक जो समय लगा है, आपने उसे कहीं भी नहीं गिनाया। आपकी मान्यता से तो यह सृष्टि मुसलमानों की तरह 'कुन' कहते ही बन गई।

(ग) महर्षि दयानन्द १ सहस्र चतुर्युगी पर्यन्त अर्थात् हजार चतुर्युगी

का समय बीतने तक मनुष्य जगत् तथा वेद की सत्ता को मानते हैं, परन्तु आचार्य जी की सन्धि सहित मान्यता अथवा अन्त में तीन चतुर्युगियों की मान्यता महर्षि के विरुद्ध है। क्योंकि उन्होंने मानव व जगत् विनाश के बाद भी सृष्टि का समय माना है।

(घ) महर्षि के सृष्टि-प्रलय के लक्षण के अनुसार आचार्य जी की गणना कदापि संगत नहीं होती।

(ङ) महर्षि दयानन्द ने १ अरब ९६ करोड़ वाला संवत् ही अपनी समस्त पुस्तकों में लिखा है। परन्तु आचार्य जी ने इसके विरुद्ध एक अरब ९७ करोड़ वाला संवत् ही मानकर लिखा है।

(च) आचार्य जी ने सन्धि युक्त सृष्टि-संवत् माना है, परन्तु महर्षि ने किसी भी ग्रन्थ में सन्धियों का वर्णन नहीं किया।

(छ) महर्षि ने जो संवत् लिखा है उसे ऐतिहासिक लिखा है। मनुष्योत्पत्ति से पूर्व तथा मनुष्य-प्रलय के बाद के समय को ऐतिहासिक कैसे माना जा सकता है? और १७ लाख २८ हजार वर्ष के सन्धि काल के समय को किसने गिना? वह कैसे ऐतिहासिक हो सकता है?

श्री आचार्य जी की मान्यता शास्त्र-विरुद्ध है—

सृष्टि-संवत् गणना में मनुस्मृति के प्रमाण महर्षि ने दिए हैं, परन्तु उनमें कहीं भी सन्धि-काल का वर्णन नहीं है। परन्तु आपने स्वेच्छा से उसे भी सन्धि-युक्त लिख दिया है। क्या यही शास्त्रीय परम्परा तथा विद्वानों को शोभा देता है। और मयासुर रचित सूर्यसिद्धान्त को महर्षि प्रामाणिक नहीं मानते। दुर्जनतोष न्याय से यदि आप उसे स्वीकार करते हैं, तो उसके अनुसार भी आप १ हजार चतुर्युगियों के सृष्टि-काल की संगति नहीं लगा सकते। क्योंकि उसमें १४ मन्वन्तरों को तो माना ही है साथ ही १५ सन्धियां तथा मनुष्योत्पत्ति से पूर्व (सूर्यसिद्धान्त के १।४ के अनुसार १ करोड़ ७० लाख ६४ हजार वर्ष सृष्टि के भिन्न २ भागों की रचना में माने हैं। क्या आचार्य जी इन

तीनों कालों को मिलाकर सृष्टि-समय को पूरा कर सकते हैं ? एक ही विषय की एक पुस्तक की एक बात को छोड़ देना और एक को मान लेना क्या अर्धजरतीन्यायतुल्य बात नहीं ? जब कि सृष्टि-रचना में समय लगता है, इस बात को आप भी मानते हैं। अतः आपकी मान्यता स्पष्ट ही किसी शास्त्र के अनुकूल नहीं है।

श्री आचार्य वैद्यनाथ जी की मिथ्या आशंकाएँ—

श्री आचार्य जी ने २० फरवरी के सार्वदेशिक पत्र में छः चतुर्युगी के समय को सृष्टि-रचना में पांच दोष गिनाए हैं। उनका क्रमशः उत्तर इस प्रकार है—(१) इस मान्यता में वेद, ज्योतिष शास्त्र अथवा महर्षि का प्रमाण क्या है ? यह प्रश्न श्री आचार्य जी की विभिन्न मान्यताओं पर भी वैसे ही लागू होता है। पहले आपने ३ चतुर्युगी का समय तो सृष्टि-रचना में स्वयं वेद से प्रतिपादित किया है। मयासुर का सूर्यसिद्धान्त सृष्टि-रचना में १७०६४००० वर्ष मानता है, महर्षि दयानन्द ने भी मुसलमानों के खण्डन में यह बात स्वीकार की है कि यह जगत् अचानक नहीं बना। आधुनिक वैज्ञानिक तथा श्री सुरेन्द्र शर्मा गौडादि सभी जो सन्धियों को मानते हैं, वे सृष्टि-रचना में करोड़ो वर्षों का समय मानते हैं। परन्तु वे दुराग्रह वश सृष्टि के लक्षणानुसार उस सृष्टि के समय को सृष्टि-संवत् नहीं गिनते, तो दुराग्रह का क्या उत्तर दिया जा सकता है। महर्षि ने बहुत ही स्पष्ट लिखा है कि ब्राह्मदिन में १४ मन्वन्तर का समय भुक्तभोग काल है और उन्होंने जो गणना संकल्प पाठ तथा मनु आदि के अनुसार की है, उसे ऐतिहासिक लिखा है। और यह भी लिखा है हजारवीं चतुर्युगी बीतने तक मानव जगत् तथा वेद रहेंगे। इससे बड़ा स्पष्टीकरण क्या हो सकता है कि शेष समय सृष्टि-रचना में लगा।

(२) दूसरे प्रश्न में आचार्य जी ने लिखा है कि 'यदि सृष्टि-रचना के समय को जोड़ा जाए तो १९८६७७२९७६ वर्ष होने चाहिए। सो

ठीक ही है, इस में हमें या किसी को क्या आपत्ति हो सकती है। श्री आचार्य जी थोड़ा शान्तबुद्धि से दो बातों पर विचार करें। एक तो यह कि महर्षि ने पाश्चात्य विद्वानों के मिथ्या वेदोत्पत्ति काल का उत्तर देने के लिए ऋ० भा० भू० में यह प्रश्न उठाया है। साथ ही यह भी लिख दिया कि ब्राह्मदिन का पूरा काल १००० चतुर्युगियां ही है। वेद का ज्ञान मानव को परमेश्वर ने दिया, अतः जो गणना महर्षि ने की है, वह ऐतिहासिक लिखी है। जिसे आर्य लोग आज तक गिनते चले आए हैं। महर्षि ने इसी ऐतिहासिक संवत् को मानने के लिए बार २ आर्यों से आग्रह किया है। दूसरी बात यह है कि वर्तमान में प्रचलित सभी पंचागों में जो सृष्टि-संवत् लिखा जाता है, क्या आपने कभी उस पर भी ध्यान दिया ? वे भी सृष्टि-रचना के समय को, जैसा वे मानते हैं, घटा कर १ अरब ६५ करोड़ इत्यादि संवत् लिखते हैं। परन्तु आप सदृश विद्वानों को क्या कहें, जो उनकी कुछ बातें मान रहे हो और कुछ नहीं। ऐसा अर्धजरती न्याय विद्वानों के वाद में शोभा नहीं देता। आपका माना हुआ संवत् १ अरब ६७ करोड़ इत्यादि तो किसी भी प्रकार से सिद्ध नहीं होता। आपने यह आक्षेप भी मिथ्या किया है कि सृष्टि-रचना के समय को क्यों छोड़ा जाए। जब ऐतिहासिक संवत् का वर्णन होगा जिसे मानव ने गिना है, तब सृष्टि-रचना के समय को कैसे मिलाया जा सकता है ?

(३) तीसरा आक्षेप भी आचार्य जी का भ्रान्तिपूर्ण है। आचार्य जी कहते हैं कि यदि छः चतुर्युगी का समय मानवोत्पत्ति से पूर्व लगा तो प्रलय में भी समय लगना ही चाहिए। हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं है कि प्रलय में भी समय लगता है। परन्तु श्री आचार्य जी की भ्रांति का कारण तो यह है कि वे उस समय को जो प्रलय का है, सृष्टि में गिनना चाहते हैं। मान्यवर आचार्य जी ! प्रथम सृष्टि और प्रलय का लक्षण बताइए ? जब जगत् कारण में लीन होने लगता है, उस प्रलय

के समय को सृष्टि के समय में क्यों गिनना चाहते हो? ऐसी भी जबर्दस्ती क्यों? देखिए महर्षि दयानन्द के निम्न वचन से स्पष्ट है कि वे सृष्टि-रचना का समय सृष्टि का और प्रलय के समय को प्रलय में गिनते हैं। देखिए—

"सृष्टि की उत्पत्ति करके हजार चतुर्युगी पर्यन्त ईश्वर इसको बना रखता है, इसी का नाम ब्राह्मदिन रक्खा है। और हजार चतुर्युगी पर्यन्त सृष्टि को मिटा के प्रलय अर्थात् कारण में लीन रखता है।"

(ऋ० भू० वेदोत्पत्ति विचार)

उपर्युक्त महर्षि के उद्धरण से आपकी तथा अन्य दूसरे सृष्टि-संवत् के वादों की स्वतः ही समाप्ति हो जाती है। और महर्षि के समस्त ग्रन्थों में प्रतिपादित सृष्टि-संवत् से कहीं भी विरोध नहीं आता।

(४) श्री आचार्य जी की यह आशंका भी निर्मूल है कि इस महर्षि के माने संवत् को मानने पर ९९४ चतुर्युगी ही बनती हैं, ब्राह्मदिन पूरा नहीं होता। अतः ऐसे पैमाने को क्यों माना जाए। महर्षि ने तो स्पष्ट लिखा है—'एकस्मिन् ब्राह्मदिने १४ चतुर्दश भुक्तभोगा भवन्ति। एक सहस्रं चतुर्युगानि ब्राह्मदिनस्य परिमाणं भवति।' (ऋ० भू०)

अर्थात् एक हजार चतुर्युगियों के ब्राह्मदिन में १४ मन्वन्तरों का समय भुक्तभोग काल है। और ब्राह्मदिन का परिमाण तो एक सहस्र चतुर्युगियां ही है। महर्षि के इस लेख में एक अङ्क की भी न्यूनता नहीं है, क्योंकि शेष रचना का समय ऐतिहासिक न होने से इस सृष्टि-संवत् में नहीं गिना परन्तु वह है ब्राह्मदिन का ही। जिन्हें इतनी छोटी सी स्पष्ट बात भी समझ में नहीं आई उनको क्या कहा जाए? तथ्य यही है कि हठ, दुराग्रह और अभिमान के कारण इस प्रकार के सत्य-विरुद्ध ऋषि-विरुद्ध प्रचार करने में हर प्रकार के संकोच को अलग उठाकर रख दिया है।

(५) श्री आचार्य जी की बातों को पढ़कर आश्चर्य होता है। उनकी

पांचवी आशंका है कि जब मानवोत्पत्ति से पूर्व का काल निश्चित है तो उसे सृष्टि-संवत् में जोड़ा क्यों न जाए ? जब महर्षि ने ऐतिहासिक संवत् तथा वेदोत्पत्ति काल लिखकर आप की आशंका का स्पष्ट उत्तर दे दिया है। क्या आपको यह बात समझ में नहीं आई ? अथवा दुराग्रह वश हो ऐसा लिख दिया। और कृतयुग किस दिन लगा अथवा एक चतुर्युगी बाद लगने वाले काल का प्रथम दिन क्या होगा ? इत्यादि प्रश्नों का वैसा ही हाल है कि 'आम्रान् पृष्टः कोविदानाचष्टे' अर्थात् बात कुछ पूछी जाए और उत्तर कुछ और ही दिया जाए। क्या किसी संवत् से दिन का पता लग सकता है ? देखिये अब १९७७ सन् तो निश्चित तथा सर्वमान्य है। क्या इसके अनुसार किसी भी व्यक्ति के सौ या पचास वर्ष पूर्व के दिन का पता लग सकता है ? अतः आपके प्रश्नों में किसी भी प्रकार का सार नहीं है। कुछ विद्वत्ता की बात लिखते, तो गौरव की बात होती। ऐसी मूर्खता की बातों से क्या गौरव बढ़ सकता है ?

दो संवतों की मान्यता—

कुछ विद्वानों का यह मत है कि एक अरब ९७ करोड़ इत्यादि तथा एक करोड़ ९६ करोड़ वाला संवत् दोनों ही ठीक हैं। उनमें श्री उदयवीर जी शास्त्री, श्री अमर स्वामी परिव्राजकादि विद्वान् हैं। इनका मत है कि एक संवत् सृष्टि रचना का है और दूसरा वेद तथा मानवोत्पत्ति का है। अतः दोनों ही ठीक हैं। परन्तु यह उनकी मान्यता सत्य की कसौटी पर ठीक नहीं उतरती। एक अरब ९६ करोड़ वाला संवत् वेदोत्पत्ति तथा मानवोत्पत्ति का है, इसमें आर्यविद्वानों में मतभेद ही नहीं है। परन्तु १ अरब ९७ करोड़ वाला सृष्टि-रचना का ठीक नहीं है। इसमें निम्नलिखित आपत्तियां हैं—

१. १ अरब ९७ करोड़ वाले संवत् को जो सृष्टि-रचना का मानते हैं, उनका मत यह है कि भुक्तभोग काल ९९४ चतुर्युगियों से बचे

सृष्टि काल की छः चतुर्युगियों में से ३ चतुर्युगी मानवोत्पत्ति से पूर्व तथा ३ चतुर्युगी मानव विनाश के बाद मान लिया जाए। परन्तु उन की इस मान्यता से अनेक दोष आते हैं—

(क) इसमें कोई वेदादिशास्त्रों का प्रमाण नहीं है।

(ख) यह मान्यता सृष्टि-प्रलय के लक्षण से विरुद्ध है।

(ग) यह मान्यता महर्षि दयानन्द की मान्यता से सर्वथा विपरीत है। क्योंकि महर्षि सृष्टि-रचना का समय सृष्टि में और प्रलय होने में जो समय लगता है वह प्रलय में मानते हैं।

(घ) वेदोत्पत्ति संवत् में तीन चतुर्युगियां मिलाने पर प्रचलित एक अरब ९७ करोड़ वाला संवत् ठीक नहीं बनता। देखिए

वेदोत्पत्ति संवत्=१९६०८५३०७७ वर्ष
तीन चतुर्युगियों का काल=१२९६०००० वर्ष[1]

तीन चतुर्युगी मिलाकर=१९७३८१३०७७ वर्ष
वर्तमान में प्रचलित संवत्=१९७२९४९०७७ वर्ष

शेष=८६४००० वर्ष

इस प्रकार ८ लाख ६४ हजार वर्षों का अन्तर होता है। क्या यह थोड़ा अन्तर है? गणित में तो एक संख्या का भी अन्तर नहीं होना चाहिए।

(ङ) महर्षि के लेखानुसार यदि सृष्टि-रचना की छः चतुर्युगियों का समय मानव-संवत् में मिलाया जाए तो एक अरब ९८ करोड़ इत्यादि संवत् बनता है, एक अरब ९७ करोड़ वाला नहीं। और यदि मयासुर रचित सूर्यसिद्धान्त के अनुसार

---

१. एक चतुर्युगी=४३२०००० वर्ष × ३=१२९६०००० वर्ष

सृष्टि-रचना का समय मानवोत्पत्ति-संवत् में मिलाया जाए
तो संवत् बनेगा— १९६०८५३०७७ वर्ष
सूर्यसिद्धान्तानुसार रचना समय=१७०६४०००

१९७७९१७०७७ वर्ष
प्रचलित संवत्=१९७२९४९०७७ वर्ष

अन्तर=४९,६८,०००

अतः एक अरब ९७ करोड़ वाला प्रचलित संवत् किसी भी प्रकार से संगत नहीं होना।

तीन चतुर्युगियों के प्रमाण पर विचार—

सृष्टि-रचना में तीन चतुर्युगी का समय लगता है, इसमें कुछ विद्वानों ने स्वयं कल्पित मिथ्या मान्यता का आधार वेद में भी ढूंढने का दुस्साहस किया है। इनमें श्री स्वामी आत्मानन्द जी तीर्थ और श्री आचार्य वैद्यनाथ प्रमुख हैं। इनके अनुसार ऋ० १०।९७।१ मन्त्र के अनुसार—

"**या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा**" है।

इन विद्वानों ने यह अपनी मान्यता सिद्ध करने की चेष्टा की है। इनमें भी श्री वैद्यनाथ जी ने अपनी मान्यता के विरुद्ध स्वयं लेखमाला निकाल डाली है। जो प्रथम तीन चतुर्युगी का समय सृष्टि-रचना में मानते थे, वे उस मान्यता को मिथ्या समझकर सन्धि काल युक्त संवत् को मानने लगे हैं। जिस पर पृथक् से विचार किया जायेगा। परन्तु इस मन्त्र से इनका स्वाभीष्ट सिद्ध नहीं होता।

मन्त्र पर विचार—

इस मन्त्र में 'त्रियुगम्' शब्द से इन विद्वानों ने तीन चतुर्युगी अर्थ लिया है। यह मन्त्र ऋग्वेद तथा यजुर्वेद (१२।७५) में आता है। इन विद्वानों ने सोचा कि यजुर्वेद का तो महर्षि दयानन्द ने सम्पूर्ण भाष्य

किया है। अतः उसका अर्थ दिखाने से हमारी बात कौन मानेगा। अतः ऋग्वेद का पता दे दिया है। महर्षि दयानन्द ने यजुर्वेद भाष्य में 'त्रियुगम्' का अर्थ तीन वर्ष किया है। आचार्य यास्क ने निरुक्त में ऋग्वेद के मन्त्र का अर्थ लिखा है—'त्रियुगं पुरा=त्रीणि युगानि पुरा' (निरु० ६।२७) अर्थात् 'त्रियुगम्' का अर्थ तीन युग किया है। इससे तीन चतुर्युगी या तीन दिव्य युग का समय कदापि नहीं निकल सकता। और तीन चतुर्युगियों के १२९६०००० वर्ष होते हैं। इतने वर्ष पूर्व ओषधियों की उत्पत्ति का क्या प्रयोजन है ? क्या परमात्मा की बनाई हुई वस्तु निरर्थक हो सकती है ? मानव जो सृष्टि की वस्तुओं का भोक्ता है, उसके जन्म से तीन वर्ष पूर्व ओषधियां पैदा हुईं, यह तो बुद्धि-संगत हो सकता है, परन्तु ३ चतुर्युगियों की बात युक्ति-विरुद्ध है। और इन विद्वानों ने यह बात नहीं सोची कि ३ चतुर्युगी पहले तो ओषधियाँ बनीं और ओषधियाँ बनने तक सृष्टि-रचना का समय क्यों नहीं स्वीकार करते ? क्या पृथिवी आदि की उत्पत्ति सहसैव हो गई ? अतः इस मन्त्र के अनुसार इन विद्वानों की बात सिद्ध नहीं होती।

क्या प्रलय में स्थिति काल नहीं होता ?

जगत् का मूल कारण 'प्रकृति' है। इसी को सांख्य योग तथा वेदान्त में सत्त्वादि तीन गुणों की साम्यावस्था कहा है। प्रलय काल में कारण रूप प्रकृति किस दशा में रहती है ? इस शंका का समाधान इस प्रकार है। यह कार्य जगत् अपने-अपने कारण में लीन होता-होता जब मूलकारण में लीन हो जाता है, तब पुनः तत्काल ही रचना का प्रारम्भ नहीं होता। हैदराबाद निवासी मित्रवर्य श्री व्रतपाल जी तथा उनके सहयोगियों का यह भ्रम ही है। जैसे सृष्टि-रचना के बाद स्थिति काल हो रहा है, ऐसे ही प्रलय में भी स्थिति काल अवश्य होता है। देखिए इसमें प्रमाण—

देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ॥

इत्यादि औपनिषद प्रमाणों से स्पष्ट है यह प्रकृतिरूप कारण प्रलय में अपने गुणों में निगूढ रहती है। उस समय किसी भी प्रकार का व्यक्त भाव न होने के कारण इसका नाम 'अव्यक्त', 'अव्याकृत' इत्यादि शब्दों से भी कहा जाता है। प्रलय काल में सब जगत् कार्यावस्था को त्यागकर प्रकृति में लीन हो जाता है। 'प्रलय' शब्द का भी यही अर्थ है। यदि ऐसा न हो अर्थात् मूलप्रकृति तक लय होकर तत्काल ही सृजन क्रिया प्रारम्भ हो जाए, तो लीनावस्था न होने से उसका नाम प्रलय कदापि नहीं हो सकता।

सांख्यदर्शन (१।१२१) में भी लिखा है—'नाशः कारणलयः'। अर्थात् कारण में लीन होने का नाम ही नाश कहलाता है।

वेद में प्रकृति के लिए 'स्वधा' शब्द का प्रयोग आता है—जिससे पूर्वोक्त बात की स्पष्ट पुष्टि हो रही है कि प्रलय में प्रकृति अपने स्वरूप में स्थित होती है। देखिए—

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यद्द न परः किं चनास ॥

ऋ० १०।१२६।२।

अर्थात् प्रलय काल में मृत्यु था, न अमृत न दिन व रात्रि के चिह्न न सूर्य और न चन्द्रमा था। उस समय प्रकृति के साथ एक परमात्मा ही विद्यमान रहता है।

प्रलय काल में पृथिवी आदि पञ्चमहाभूतों के असंख्य परमाणु प्रलयकाल में द्वयणुकादि कार्य को प्रारम्भ नहीं कर सकते। क्योंकि उस समय ईश्वर की संहार करने की ईक्षण शक्ति प्रतिबन्धक होती है। और प्रलयकाल पूर्ण होने तक अर्थात् १००० चतुर्युगी बीतने तक यह जगत् अव्यक्तावस्था में ही रहता है।

महर्षि दयानन्द ने ऋ० भा० भूमिका में प्रलयदशा का वर्णन करते हुए लिखा है—(क) "जब यह कार्य-सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी, तब

तक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर और दूसरा जगत् का कारण अर्थात् जगत् बनाने की सामग्री विराजमान थी। उस समय (असत्) शून्य नाम आकाश अर्थात् जो नेत्रों से देखने में आता सो भी नहीं था क्योंकि उस समय उसका व्यवहार नहीं था। उस काल में सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण मिला के जो प्रधान कहाता है, वह भी नहीं था।"

(ख) "जब प्रलय होता है तब भी सब जगत् कारणरूप होके ईश्वर के सामर्थ्य में रहता है।" (ऋ० भू० सृष्टिविद्याविषय)

(ग) "हजार चतुर्युगी पर्यन्त सृष्टि को मिटाके **प्रलय अर्थात् कारण में लीन रखता है**। उसका नाम ब्राह्मरात्रि रक्खा है।" (ऋ० भू० वेदोत्पत्ति विषय)

(घ) प्रलय का वर्णन करते हुए महर्षि लिखते हैं—

'प्रलयावसरे वियोज्य विनाशयते।' (ऋ० भू० सृष्टि०) अर्थात् प्रलय के समय नियुक्त परमाणु अपने-अपने कारण में लीन रहते हैं।

(ङ) जब २ विद्यमान सृष्टि होती है, उसके पूर्व सब आकाश अन्धकार रूप रहता है और उसी अन्धकार में सब जगत् के पदार्थ और सब जीव ढके हुए रहते हैं।" (पञ्चमहायज्ञ विधि)

(च) और प्रलय समय में कारण में सब जगत् का होम करने वाले हो।' (आर्याभिविनय १।२)

(छ) **'विश्वमन्यन्निविशते'** (ऋ० ७।८।१२।२) मन्त्र की व्याख्या में महर्षि लिखते हैं—'आप से अन्य (भिन्न) विश्व अर्थात् सब जगत् जिस समय आपके सामर्थ्य में (प्रलय में) रहता है, 'निविशते' प्रवेश करता है (कार्य सब कारणात्मक होता है) उस समय में भी आप हमारी रक्षा करो।' (आर्याभिवि० १।४७)

(ज) महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में प्रलय दशा का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है—

"प्रलय में जगत् प्रसिद्ध नहीं था। और सृष्टि के अन्त अर्थात् प्रलय

के प्रारम्भ से जब तक दूसरी वार सृष्टि न होगी, तब तक भी जगत् का कारण सूक्ष्म होकर अप्रसिद्ध रहता है। क्योंकि—

तम आसीत्तमसा गूळमग्रे ॥ ऋ० १०।१२६।३॥
आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ मनु० १।५॥

यह सब जगत् सृष्टि के पहले प्रलय में अन्धकार से आवृत आच्छादित था। और प्रलयारम्भ के पश्चात् भी वैसा ही होता है। उस समय न किसी के जानने न तर्क में लाने और न प्रसिद्ध चिह्नों से युक्त 'इन्द्रियों से जानने योग्य था और न होगा।''

''प्रलय में निकम्मे जैसे सुषुप्ति में पड़े रहते हैं वैसे रहते हैं।''

(स०प्र० अष्टम समु०)

इत्यादि वेद, मनुस्मृति तथा महर्षि दयानन्द के प्रमाणों से स्पष्ट है कि प्रलय काल में जगत् वियुक्त होकर अपने कारण में लीन रहता है। परन्तु श्री व्रतपाल जी स्थान २ पर सष्टि-विज्ञान के चित्र दिखा २ कर एक मिथ्या शास्त्र-विरुद्ध मान्यता का प्रचार करके महर्षि दयानन्द का खण्डन कर रहे हैं। इनकी मिथ्या मान्यता है कि सूर्योत्पत्ति तक का काल प्रलय का है और यह जगत् अपने २ कारण में लीन होता-होता अन्तिम स्तर पर जिस क्षण भी पहुँचता है, तभी से पुनः सृजन क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। अर्थात् सूक्ष्म कारण से स्थूल, स्थूलतर तथा स्थूलतम दशाएँ होने लगती हैं। यह कैसी उपहास्यास्पद बात है।

मैंने श्री व्रतपाल जी से स्वयं मिलकर उनकी मान्यता के दोषों को दर्शाया और महर्षि के निम्न लेख का उद्धरण दिखाया है, तब तो वे निरुत्तर ही रह गए। मैंने उनसे कहा कि आपकी मान्यता में निम्न प्रबल दोष हैं—(१) यह मान्यता सृष्टि और प्रलय के लक्षण के विरुद्ध है। महर्षि ने सृष्टि और प्रलय का लक्षण यह किया है—

"प्रमथ ही जो संयोग का आरम्भ है, संयोग विशेषों से अवस्थान्तर अर्थात् दूसरी २ अवस्था को सूक्ष्म से स्थूल २ बनते बनाते विचित्र रूप बनी है। इसी से यह संसर्ग होने से सृष्टि कहाती है।"

(स० प्र० अष्टम०)

'प्रलय का लक्षण—जो कार्यजगत् का कारणरूप होना। (आर्यो०)

(२) श्री व्रतपाल जी प्रथम परमाणु-संयोग से लेकर सूर्योत्पत्ति तक के समय को प्रलय में गिनते हैं। परन्तु जब भी परमाणुओं का संसर्ग प्रारम्भ हो जाता है, वह तो संसर्ग होने से सृष्टि का समय है। परन्तु उन्होंने इस बात पर गम्भीरता से विचार नहीं किया। उन्हें अपनी मिथ्या मान्यता का सुबोध महर्षि के निम्न लेख से हो जाना चाहिए। महर्षि लिखते हैं—

"जब सृष्टि का समय आता है, तब परमात्मा उन परम सूक्ष्म पदार्थों को इकट्ठा करता है। उसकी प्रथम अवस्था में जो परम सूक्ष्म प्रकृति रूप कारण से कुछ स्थूल होता है उसका नाम महत्तत्त्व है।"

(स० प्र० अष्टम)

उनकी मान्यता के अनुसार सूर्योत्पत्ति की बात तो क्या, महत्तत्त्व की रचना भी सृष्टि के काल में महर्षि मानते हैं। अतः श्री व्रतपालजी की मिथ्या मान्यता ही है।

(३) **ईश्वरीय व्यवस्था के विरुद्ध**—ईश्वर की सम्पूर्ण व्यवस्था में एकरूपता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उसके सृष्टि नियमों में कहीं भी विरूपता का आभास नहीं होता। इसका कारण है—ईश्वर की सर्वज्ञता। अतः जैसे सृष्ट्युत्पत्ति के बाद स्थिति काल होता है, जिस से कोई भी इंकार नहीं कर सकता, ठीक वैसे ही प्रलय में भी स्थिति काल अवश्य होता है। महर्षि का—'हजार चतुर्युगी पर्यन्त सृष्टि को मिटाके प्रलय अर्थात् कारण में लीन रखता है' (ऋ०भू०) यह वाक्य प्रलय के स्थिति काल को स्पष्ट बता रहा है। और इस वाक्य से

प्रलय का अर्थ कारण में लीन होना है, इस बात की भी पुष्टि हो रही है।

वेद या मानवोत्पत्ति संवत् का सृष्टि-संवत् नाम का औचित्य—

बहुत से विद्वानों तथा स्वाध्यायशील व्यक्तियों ने यह भी प्रश्न उठाया है कि जब सभी विद्वान् तथा महर्षि दयानन्द इस बात को मानते हैं कि एक अरब ९६ करोड़ वाला संवत् वेद तथा मानवोत्पत्ति का संवत् है, तब इसका नाम सृष्टि-संवत् क्यों ? इस प्रश्न में कुछ औचित्य अवश्य प्रतीत होता है, परन्तु विचार करने से प्रश्न का समाधान अनायास ही हो जाता है। यद्यपि महर्षि दयानन्द ने ऋ० भू० में वेदोत्पत्ति का प्रश्न करके इस संवत् की गणना की है। परन्तु उत्तर में (एतावन्त्येव वर्षाणि वर्तमानकल्पसृष्टेश्चेति) कहकर इस संवत् को सृष्टिसंवत् भी माना है। और सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास में तो जगदुत्पत्ति का ही प्रश्न करके यही गणना दी है। इससे स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द इस संवत् को जगदुत्पत्ति संवत् अथवा सृष्टि-संवत् मानते है। क्योंकि सृष्टि तथा जगत् शब्द पर्यायवाची ही हैं। दूसरी बात यह है कि सृष्टि की रचना का प्रथम परमाणु-सयोग जब से प्रारम्भ हुआ, तब से लेकर प्रलय के प्रथम क्षण तक के सम्पूर्ण समय को सृष्टि का समय सब मानते हैं, तो क्या इस ऐतिहासिक संवत् को सृष्टि-संवत् नहीं कह सकते ? जब कोई पूछता है कि वेद का ज्ञान मनुष्य को कब मिला ? तब हम सब आर्य लोग यही उत्तर देते हैं कि सृष्टि के आदि में। यदि हम मानवोत्पत्ति के समय को सृष्टि का आदि का समय कह सकते हैं, तो वेद-संवत् को सृष्टि-संवत् नहीं कह सकते ? महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में अनेक प्रश्न ऐसे किए हैं, जिनमें सृष्टि शब्द का प्रयोग है, और उन सब का अभिप्राय मानवोत्पत्ति से ही है। देखिए—

(क) आदि सृष्टि में एक जाति थी या अनेक ? (स०प्र०स० समु०)

(ख) आदि सृष्टि में मनुष्यादि का बाल्य, युवा वा वृद्धावस्था में सृष्टि हुई थी अथवा तीनों में। (स० प्र० स० समु०)

(ग) सृष्टि के आदि में एक या अनेक मनुष्य उत्पन्न किए थे वा क्या ? (स०प्र०अ० समु०)

अतः स्पष्ट है कि मानव या वेदोत्पत्ति काल को भी सृष्टि-संवत् कहने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। सृष्टि का अर्थ सर्जन है अतः क्रिया का जहाँ २ अर्थ संगत होता है, वहां २ सृष्टि शब्द के प्रयोग में कोई आपत्ति नहीं है।

और हम लोक में देखते हैं कि मानव की रचना गर्भ में ९-१० मास तक होती रहती है किन्तु मनुष्य की आयु उसके जन्म के दिन से ही मानी जाती है। इसी प्रकार सृष्टि-रचना के प्रथम परमाणु-संयोग से लेकर मानव-रचना तक समय गर्भवत् ही है, उसकी ऐतिहासिक संवत् में गणना का कोई औचित्य नहीं प्रतीत होता। संवत् आदि गणना ऐतिहासिक काल के लिए की जाती है।

क्या सन्धिसहित संवत् ठीक है ?

सष्टि-संवत् के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न प्रकार के विचार मिलते हैं। उनमें एक विचार यह है कि क्योंकि महर्षि दयानन्द ने जो संवत् गिनाया है, उससे सृष्टि-संवत् का सम्पूर्ण काल पूरा नहीं होता, अतः महर्षि दयानन्द की गणना में कुछ भूल रह गई। महर्षि दयानन्द की भूल पकड़ में कैसे आई ? इसका आधार बना अप्रामाणिक मयासुर का सूर्यसिद्धान्त। इन विद्वानों का कथन यह है कि सूर्यसिद्धांत को महर्षि ने प्रामाणिक माना है, अतः उसके अनुसार गणना की जानी चाहिए। इस मान्यता के मानने वाले निम्न विद्वान् हैं—

(१) श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक।
(२) श्री पं० सुरेन्द्र शर्मा गौड।
(३) श्री पं० काशीनाथ जी शास्त्री।

(४) श्री डा० शिवपूजन सिंह कुशवाहा ।
(५) श्री आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री ।

सृष्टि-संवत् में प्रामाणिक ग्रन्थ—

सृष्टि-संवत् की गणना के निम्नलिखित आधार हैं—
वेद, ज्यौतिष शस्त्र, मनुस्मृति, तथा संकल्प पाठ ।

वेद में केवल एक अथर्ववेद के (का० ८ सू० २ मन्त्र २१) अनुसार सृष्टि की कुल आयु चार अरब ३२ करोड़ मानी गई है। इससे भिन्न वेदों में से कोई भी बात सृष्टि-संवत् के सम्बन्ध में किसी विद्वान् ने नहीं दिखाई है। ज्यौतिष-शास्त्र में वर्तमान में मयासुर रचित सूर्य-सिद्धान्त मिलता है। प्रायः ये विद्वान् उसी को प्रामाणिक मानने लगे हैं। परन्तु यह उनकी भ्रान्ति है। उनकी भ्रान्ति के दो मुख्य कारण हैं। एक यह कि महर्षि दयानन्द ने वसिष्ठकृत सूर्यसिद्धान्त लिखा है, यह वसिष्ठमुनिकृत नहीं। और महर्षि ने सूर्यसिद्धान्त के विषय भी लिखे हैं—

ज्यौतिषं वसिष्ठाद्यृष्युक्तं रेखाबीजगणितमयं चेति ।

(ऋ० भू० ग्रन्थप्रामा०)

अर्थात् वसिष्ठादि ऋषि प्रोक्त सूर्यसिद्धान्त प्रामाणिक है, जिसमें रेखा तथा बीजगणित विद्याएँ हैं। परन्तु यह मयासुर का सूर्यसिद्धांत न वसिष्ठादि ऋषि प्रोक्त है और न इसमें रेखा तथा बीजगणित विद्याएँ ही हैं। मयासुर रचित इस आधुनिक सूर्यसिद्धान्त की अन्त्य परीक्ष्य इसमें पृथक्शः की गई है। और यदि कुछ काल के लिए इस मयासुर के सूर्यसिद्धन्त को सष्टि-संवत् गणना का आधार मान भी लें, तो आज तक कोई भी विद्वान् उसकी संगति नहीं लगा सका है और नाही लगा सकता। यह हम बड़े गर्व से इसलिए लिख रहे हैं कि ये विद्वान् मानते तो हैं सूर्यसिद्धान्त को किन्तु हमने जो समस्या इनके सामने रखी थी, वह आज भी वैसे ही है। इस पुस्तक के १। २४ श्लोक के

अनुसार सृष्टि-रचना में एक करोड़ सत्तर लाख चौंसठ हजार (१७०६४००० वर्ष) वर्ष लगे और १४ मन्वन्तर तथा १५ सन्धिकाल। इन तीनों की गणना करके क्या कोई एक सहस्र चतुर्युगी के काल को पूरा दिखा सकता है ? यह तो गणित का प्रश्न है, इसमें तो एक संख्या की भूल भी भूल है। महर्षि दयानन्द ने इस मयासुर के ग्रन्थ का एक भी प्रमाण नहीं दिया है।

मनुस्मृति तथा संकल्प पाठ में कहीं भी सन्धि का नाम नहीं है। महर्षि दयानन्द ने मनुस्मृति के श्लोक प्रमाण रूप में देकर संवत् की गणना की है। जिसमें कोई भी भूल नहीं हैं। परन्तु स्वयं भूले महर्षि की भूल कहने से तो घबराते हुए क्लर्किल मिस्टेक बताकर अपने हृदय के विचारों को प्रकट करते रहते हैं। क्या महर्षि सन्धिकाल मानते है ? मयासुर रचित सूर्यसिद्धान्त में जिन सन्धियों को माना है, उनका महर्षि ने कहीं भी उल्लेख नहीं किया। परन्तु ये विद्वान् महर्षि के दो स्थल देकर महर्षि की मोहर अपनी मिथ्या मान्यता लगाकर सत्यसिद्ध करना चाहते हैं। वे स्थल ये है--

(१) मन्वन्तरपर्यावृत्तो सृष्टेर्नैमित्तिकगुणानामपि पर्यावर्तनं किञ्चित् किञ्चिद् भवत्येव इत्यतो मन्वन्तरसंख्या क्रियते।" (ऋ० भू०)

अर्थात् मन्वन्तर के बदलने पर सृष्टि के नैमित्तिक गुणों का भी परिवर्तन थोड़ा-थोड़ा होता है, इसी कारण मन्वन्तर संज्ञा की जाती है। इस महर्षि के वचन में कहीं भी १७२८००० वर्ष की सन्धि का नाम नहीं है। और नैमित्तिक गुणों के परिवर्तन से सन्धिकाल अर्थ कैसे हो गया ? यदि दुर्जनतोष न्याय से महर्षि सन्धि को मानते, तो कहीं तो गणना में निर्देश करते। महर्षि मौन होकर इस सन्धि के काल को मानते तो क्यों छोड़ते ? क्या कोई साधारण संस्कृत का जानने वाला इस वाक्य से सन्धि काल निकाल सकता है ?

(२) 'जब महाप्रलय होता है, उसके पश्चात् आकाशादि क्रम

अर्थात् जब आकाश और वायु का प्रलय नहीं होता और अग्न्यादि का होता है, तब—अग्न्यादि क्रम से और जब विद्युत् अग्नि का भी नाश नहीं होता, तब जलक्रम से सृष्टि होती है।' (स० प्र० अ० समु०)

इन विद्वानों की मान्यता है कि यहाँ महर्षि ने जल-प्रलय को माना है। परन्तु उन्होंने महर्षि के वाक्य पर ध्यान नहीं दिया। महर्षि ने स्पष्ट लिखा है कि 'जब महाप्रलय होता है' और उसी की व्याख्या अर्थात् शब्द लिखकर की है। क्या कोई इस को मान सकता है कि अर्थात् शब्द प्रथम बात से भिन्नता कर देता है? अतः यह उनकी भ्रान्ति ही है। और यदि उनके कहने से यह वाक्य जल प्रलय सिद्ध करता है, तो इसमें तो अग्नि प्रलय भी लिखी है, तो क्या इन विद्वानों में से कोई विद्वान् यह बताने का साहस कर सकता है कि अग्नि-प्रलय कब होती है? अतः विद्वानों को यह शोभा नहीं देता कि लेखक के अभिप्राय को न समझकर उसका अपनी मान्यता के अनुसार व्याख्या कर लेना। अतः महर्षि दयानन्द की पुस्तकों में से कोई भी सन्धिकाल सिद्ध नहीं कर सकता और न यह महर्षि की मान्यता ही है। जो विद्वान् महर्षि के ग्रन्थों में टिप्पणियाँ दे देकर महर्षि पर अपनी मान्यता थोपने का प्रयास कर रहे हैं, उन्हें कुछ सोचना चाहिए कि हम क्या अनर्थ करने लगे हैं?

सन्धिकाल मनाने में दोष—सृष्टि-संवत् विषयक समस्त ग्रन्थों में जो भी समय के पैमाने कलि आदि युग, चतुर्युगी, मन्वन्तरादि माने हैं, उनमें इनके वर्षों के विषय में मतभेद नहीं है। और इन सबके अनुसार समस्त गत वर्षों की गणना करने पर महर्षि के ऐतिहासिक संवत् से एक वर्ष का भी भेद नहीं आता। परन्तु जो सृष्टि-रचना का छः चतुर्युगी का समय है, जो कि सृष्टि का ही है, उसके सम्बन्ध में मतभेद है। जो इस काल को १५ सन्धियाँ मानकर पूरा करते हैं, वे महाभूल करते हैं। क्योंकि सन्धि बीच के समय को कहा जाता है। १४

मन्वन्तरों की १३ सन्धि हो सकती हैं, १५ नहीं। अतः ये पौराणिक मयासुर की मिथ्या कल्पना से प्रभावित होकर दूसरों को भी गुमराह करना चाहते हैं। क्या वे नीचे लिखे प्रश्नों का उत्तर देने का साहस करेंगे—

(१) १४ मन्वन्तरों की १५ सन्धियाँ कैसे हो सकती हैं ? क्या यह सृष्टि-समय का वितरण कल्पना-प्रसूत नहीं ?

(२) सन्धि मानने वाले एक सन्धि का समय १७ लाख २८ हजार वर्ष मानते हैं। इतने लम्बे समय को कौन गिनता है ?

(३) सन्धिकाल को मयासुर ने जलप्लव कहा है। जलप्लव का जलप्रलय अर्थ किसी व्याकरणादि शास्त्र से सम्भव है ?

(४) सन्धि-काल के जलप्लव में क्या मनुष्य तथा वेद रहते हैं, या नहीं ? जब जलप्लव हो जाता है तब मनुष्यादि जगत् की क्या स्थिति होती है ?

(५) १७ लाख २८ हजार वर्षों में जब सर्वत्र जल ही जल हो जाता है, तो मानव-सृष्टि कहाँ और कैसे रह सकती है ? और वेदज्ञान भी लुप्त हो जाएगा। तब क्या परमात्मा दूसरी बार मनुष्यादि सृष्टि को बनाता है और वेदज्ञान देता है ? सुप्त-प्रबुद्ध न्याय से वेदज्ञान को मानना महामूर्खता है। सवा सत्रह लाख वर्षों तक मानव शरीर जल में जीवित नहीं रह सकते और शरीरादि के बिना सुप्त-प्रबुद्ध न्याय की संगति लगाना असम्भव बात है।

(६) क्या जैसे वेदादि शास्त्रों में प्रलय काल की स्थिति का वर्णन मिलता है, वैसे ही आपकी मानी हुई जल प्रलय का वर्णन मिलता है ? यदि हों तो उसका स्पष्टीकरण कीजिए। अन्यथा शास्त्र विरुद्ध तथा युक्ति विरुद्ध मान्यता को क्यों फैलाने की चेष्टा करते हो।

(७) आपका माना हुआ जलप्रलय प्रलय के लक्षण के विरुद्ध है। प्रलय का लक्षण है—कारण में लीन होना। यदि आप कहो कि यह

जगत् स्थूल से सूक्ष्म कारण में लीन होता-होता जल में लीन हो जाता है, तब पृथिवी आदि के भी न रहने से मनुष्यादि भी नहीं रह सकते। तब आपको दुबारा सृष्टि्युत्पत्ति माननी होगी। और आपकी सृष्टि-संवत् गणना दिवास्वप्न की भांति बेकार ही होगी।

(८) जो विद्वान् १५ सन्धियाँ मानते हैं, क्या वे बता सकते हैं कि आपके अनुसार सृष्टि-प्रलय का लक्षण क्या है ? क्या महर्षि के लक्षण तथा लेख के अनुसार सृष्टि-रचना का समय सृष्टि का आप नहीं मानते ? महर्षि तो प्रथम परमाणु-संयोग से सृष्टि का समय मानते हैं। और आप सन्धि मनाने वाले इस सृष्टि-रचना के समय को अपनी गणना में क्यों नहीं जोड़ते ? क्या आप सृष्टि को सहसोत्पन्न मानते हो ?

(९) जिस मयासुर रचित सूर्यसिद्धान्त को आप प्रामाणिक मानते हैं, उसके अनुसार (१।२४) श्लोक में सृष्टि-रचना में जो १७०६४००० वर्ष माने हैं, उस समय को, १४ मन्वतन्रों का समय तथा १५ सन्धियों के वर्षों को जोड़ने से एक सहस्र चतुर्युगी पूरी हो सकती है ?

(१०) क्या सन्धियुक्त सृष्टि-संवत् ऐतिहासिक कहा जा सकता है ? महर्षि ने लिखा है कि आर्य लोग आज तक गिनते चले आए हैं। क्या आप की मान्यता महर्षि दयानन्द के विरुद्ध नहीं है ?

(११) मयासुर रचित सूर्यसिद्धान्त को मानने वाले पंचांगों में सृष्टि-संवत् एक अरब ९५ करोड़ इत्यादि पढ़ते लिखते हैं। किन्तु आप उन्हीं के अनुयायियों का एक अरब ९७ करोड़ वाला संवत् कैसे ? क्या यह लगभग दो करोड़ का अन्तर नगण्य है ?

(१२) जैसे आप लोग महर्षि दयानन्द की भूल मानते हो, क्या वैसे ही मनु तथा संकल्प पाठ में भी भूल है ? यदि है तो स्पष्ट क्यों नहीं कहते ?

(१३) सन्धियों को मानने वाले भी सृष्टि-रचना में करोड़ों वर्ष लगे मानते हैं। किन्तु उन वर्षों को सृष्टि-संवत् में जोड़ते क्यों नहीं ? क्या यह रचना का समय सृष्टि-लक्षण के अनुसार सृष्टि का नहीं है ?

श्री खेमचन्द जी यादव का भ्रम—अपने को महर्षि दयानन्द का शिष्य मानने वाले श्री यादव जी की अपनी नई ही सूझ पढ़ने में आई है। वे महर्षि दयानन्द के लेख को प्रामाणिक भी मानते हैं और नहीं भी मानते। उनके कथनानुसार महर्षि के वेदोत्पत्ति प्रकरण में केवल सत्तर पंक्तियों में ही सृष्टि-संवत् है, शेष निरर्थक है। अथवा दूसरा प्रकरण प्रारम्भ होना मानते हैं। अथवा अब तो यह भी कहने लगे हैं कि महर्षि दयानन्द की ऋ० भा० भू० में वेदोत्पत्ति का उपसंहार किसी ने मिला दिया है, वह महर्षि का लेख ही नहीं। कैसी विचित्र प्रतिभा के ये धनी हैं ? यह तो पाठक भी समझ लेंगे। श्री यादव जी के अनुसार महर्षि का निम्न लेख सर्वाधिक प्रामाणिक है, अन्य नहीं। देखिए—

'**पूर्वोक्त** ब्राह्मदिन के दूसरे प्रहर के ऊपर मध्याह्न के निकट दिन आया है और जितने वर्ष वैवस्वत मनु के **भोग होने को बाकी हैं**, उतने ही मध्याह्न में बाकी रहे हैं।' (ऋ० भू० वेदोत्पत्ति)

यहाँ इस लेख से श्री यादव जी का अभिप्राय यह है कि यहाँ महर्षि ने ब्राह्मदिन का मध्याह्न लिखा है। क्योंकि सृष्टि का समय १ सहस्र चतुर्युगी है, अतः उसी का मध्याह्न महर्षि मानते हैं। श्री यादव जी ने सन्धिकाल वालों की खूब निन्दा की है। परन्तु स्वयं एक अन्य अज्ञान में फँसे हुए हैं। यदि महर्षि दयानन्द को 'मध्याह्न' शब्द से सृष्टि के मध्याह्न से मतलब होता तो, अपने लेख में कहीं तो स्पष्ट करते ? और जो ऋषि का लेख उनकी मान्यता का खण्डन करता है, उसको यह कहकर न मानना कि यह महर्षि का नहीं है। यह कितनी बड़ी भ्रान्ति है। जो बात किसी विद्वान् को न सूझी है, वह आपको सूझी, एतदर्थ यादव जी भाग्यशाली हैं। परन्तु जिस लेख का उद्धरण

आप मानते हैं, उसी से आपकी मान्यता का स्पष्ट खण्डन हो जाता है। देखिए—

(१) उपर्युक्त उद्धरण में 'पूर्वोक्त ब्राह्मदिन' शब्द महर्षि ने लिखे हैं। इन पर यादव जी ध्यान देवें। जिस वेदोत्पत्ति काल की महर्षि ने गणना कराई है, उसी का मध्याह्न लेना उचित है। यदि यादव जी यह आग्रह करें कि महर्षि ने 'ब्राह्मदिन' शब्द लिखा है, जो कि १ सहस्र चतुर्युगियों का होता है, तो हम उनसे पौनःपुन्येन यही निवेदन करना चाहते हैं कि यह सत्य है कि ब्राह्मदिन १ सहस्र चतुर्युगियों का होता है। परन्तु वेदोत्पत्ति काल भी ब्राह्मदिन के अन्तर्गत होने से ब्राह्मदिन कहला सकता है। पटो दग्धन्याय से शब्दों की प्रवृत्ति समुदाय तथा अवयव दोनों में होती है। महाभाष्य में समुदाय शब्द 'अवयवेष्वपि वर्त्तन्ते' न्याय से समुदाय शब्दों की अवयवों में प्रवृत्ति होती है। और महर्षि के कुछ उद्धरण देखिए, जिनमें 'ब्राह्मदिन' शब्द से एक सहस्र चतुर्युगी न लेकर आपको भी ब्राह्मदिन के अन्तर्गत वेदोत्पत्ति काल ही मानना पड़ेगा। देखिए—

(१) 'एकस्मिन् ब्राह्मदिने १४ चतुर्दश भुक्तभोगा भवन्ति।' (ऋ० भू०) एक ब्राह्मदिन में १४ मन्वन्तरों का काल भुक्तभोग है। यहां पर यही कहना उचित है कि ब्राह्मदिन के अन्तर्गत इतना समय भुक्तभोग काल है।

(२) 'यह जो ब्राह्मदिन है, इसके १९६०८५२९७६ वर्ष व्यतीत हुए हैं और २३३३२२७०२४ वर्ष इस सृष्टि को भोग करने के बाकी हैं।'

(ऋ० भू० वेदोत्पत्ति०)

क्या यादव जी इन उद्धृत दो स्थलों में ब्राह्मदिन का अर्थ एक सहस्र चतुर्युगी करके ब्राह्मदिन पूरा कर सकते हैं? यदि नहीं, तो ब्राह्मदिन के अन्तर्गत काल ही अर्थ लेना उचित है।

(३) श्री यादव जी उस अपनी मान्यता के परम प्रमाण वाक्य

को पुनः एक बार पढ़ें और देखें उस वाक्य में 'भोग होने को बाकी हैं' कहकर महर्षि ने स्पष्ट ही कर दिया है कि यहाँ १४ मन्वन्तर जो भोग काल है, उसी का मध्याह्न माना है। भोग तो मानव ही करता है। अतः मानवोत्पत्ति से पूर्व का समय भोगकाल कैसे माना जा सकता है।

इन दो बातों से यद्यपि यादव जी के भ्रम का निराकरण हो जाना चाहिए। और उनकी मान्यता में यह भी दोष है कि वे यहाँ ब्राह्मदिन के पूर्व काल का मध्याह्न मान तो बैठे हैं, परन्तु उभयतः पाशा की तरह बन्ध गए हैं। और इसी भ्रम से ऋषि के भक्त होकर भी ऋषि के कुछ लेख को मान रहे हैं और कुछ को छोड़ रहे हैं। यह अर्ध-जरतीय न्याय के सदृश आपकी बात को कौन मानेगा? और आप की मान्यता में यह भी दोष है कि आपने ब्राह्मदिन की ३ चतुर्युगी का समय मानव विनाश के बाद माना है। क्या आप सृष्टि-प्रलय का लक्षण बनाकर विचार नहीं करते कि जब मानव नहीं रहेगा, तब तो वियोगकाल प्रारम्भ होने से प्रलय का समय प्रारम्भ हो गया, उसे आप सृजनकाल न होने से सृष्टि काल कैसे मानते हैं? यदि आप शान्तबुद्धि से बैठकर विचार करेंगे, तो सत्यार्थ का प्रकाश स्वतः ही हो जायेगा।

उपसंहार

सृष्टि-संवत् विषय में दयानन्द संदेश का विशेषाङ्क मार्च, अप्रैल १९७४ में छपा था। जिसमें ऋषि प्रतिपादित १९६०८५३०७७ संवत् को प्रमाण और युक्तियों से सिद्ध किया गया था। विपक्ष के पूरे लेख प्रकाशित कर उनके समस्त आक्षेपों का उत्तर प्रमाण और युक्तियों से दिया गया था। जिन्होंने उस पुस्तक का अध्ययन नहीं किया वे उस का अध्ययन कर सकते हैं। आवश्यक सभी बातें तो इस पुस्तक में भी

आ गई हैं। संवत् विषयक आवश्यक बातों को इस पुस्तक में सरलता से समझाने का पूरा प्रयत्न किया गया है।

सृष्टि-संवत् पर विचार प्राचीन साहित्य और परम्परा से प्राप्त इतिहास के आधार पर ही किया जा सकता है। वर्तमान समस्त विचारकों में केवल छः चतुर्युगी की गणना विषयक मतभेद है। इस विषय में मयासुर और महर्षि की मान्यता में विरोध है। जिसका दिग्दर्शन पूर्व के प्रकरणों में कराया जा चुका है परन्तु विपक्षी आर्य विद्वान् तथा संस्थायें सूर्यसिद्धान्त को प्रामाणिक ग्रन्थ मानकर वर्तमान समय मयासुर प्रतिपादित संवत् को मान रहे और प्रयोग कर रहे हैं। कोई आर्य विद्वान् ऋषि से क्लेरीकल मिस्टेक हो गई मानते हैं। कोई आर्य विद्वान् निरर्थक साम्यता प्रतिपादन का प्रयत्नकर रहे हैं। साम्यता असम्भव है जिसको विस्तार से पहले सिद्ध कर दिया गया है। अधिकतर आर्य विद्वान् अब ऋषि प्रतिपादित संवत् को शुद्ध मानने लगे हैं। किन्तु वे इस विषयक लेख आदि न्यून कर रहे हैं। सब की दृष्टि एकता को दृष्टि में रखते हुए सार्वदेशिक सभा के निर्णय पर लगी हुई है। किन्तु सभा के धर्मार्यसभा के अधिकारी हठ, दुराग्रह और अभिमान वश इस विषय पर विचार ही विद्वानों में नहीं रखते। तीन वर्षों से आर्षसाहित्य प्रचार ट्रस्ट तथा बहुत से आर्य इस विषय पर विचार करने के लिए सभा से कह रहे हैं।

विपक्षी विद्वान् अनेक निर्विवाद तथा विषयान्तर बातों का कथन करके लेखों को लम्बा कर इस विषय को निरर्थक लम्बा और जटिल बना रहे हैं। आवश्यक प्रश्नोत्तरों पर विचार नाम मात्र करते हैं। श्री पं० वैद्यनाथ जी ने ऐसा ही किया है। विपक्षी विद्वानों के परस्पर तथा उनके अपने लेखों में भी बहुत से विरोध मिलते हैं। आवश्यक बातों पर प्रायः विचार उनके लेखों में नहीं होते अथवा नाम मात्र होते हैं। अतः इस विषयक अपने पक्ष पर संक्षेप से कथन किया जाता है, जिन पर विचार अत्यावश्यक है।

१—महर्षि दयानन्द ने वेदोत्पत्ति, मानवोत्पत्ति तथा जगदुत्पत्ति का काल १९६०८५३०७७ वर्ष ही सर्वत्र माना है। इसके विरुद्ध कहीं भी नहीं।

२—महर्षि से इस गणना में क्लेरीकल मिस्टेक किसी प्रकार से भी किञ्चिन्मात्र सिद्ध नहीं होती।

३—महर्षि उक्त संवत् को मानव का गिना हुआ मानते हैं।

४—महर्षि एक ब्राह्मदिन में एक हजार चतुर्युगी तथा उसमें ९९४ चतुर्युगी का भुक्तभोग काल मानते हैं।

५—महर्षि मानव और वेद को सृष्टि के अन्त तक रहना मानते हैं, भुक्तभोग काल के समाप्त होते ही प्रलय काल का प्रारम्भ मानते हैं।

६—महर्षि अनुसार मानव और वेद सृष्टि निर्माण के पश्चात् बराबर वर्तमान रहते हैं।

७—महर्षि का मान्य संवत् संकल्प पाठ तथा मनुस्मृति के अनुसार है। संकल्प पाठ से व्यतीत काल का पता चलता है। मनुस्मृति मन्वन्तर और सत्युग आदि काल की गणना करने में सहायक होती है।

८—मनुस्मृति और संकल्प पाठ सर्वमान्य है अतः महर्षि ने अपने मान्य संवत् को सर्वमान्य लिखा है। इन दोनों से महर्षि मान्य संवत् ही सिद्ध होता हैं।

९—महर्षि ने मयासुर रचित सूर्यसिद्धान्त की सन्धि मान्यता का अपने ग्रन्थ में नाम मात्र भी कथन नहीं किया। यदि उनको स्वीकार होतो तो अवश्य कथन करते। जो ऐसा मानते हैं महर्षि इस ग्रन्थ को प्रामाणिक और आर्ष मानते थे वे अपनी इस मान्यता को किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं कर सकते क्योंकि ऐसा मानते तो उसको अवश्य प्रस्तुत करते तथा तदनुसार विचार करते। ऐसे लोग यह नहीं कह सकते कि इस विषय पर विचार करते हुए महर्षि की दृष्टि से यह ग्रन्थ ओझल था। महर्षि की अनेक मान्याओं का सन्धिकाल मान्यता से विरोध है।

१०—महर्षि ने मयासुर अनुसार चराचर की उत्पत्ति का काल को बिलकुल मान्यता प्रदान नहीं की। इस काल को मानने पर महर्षि प्रतिपादित संवत् का समन्वय मयासुर के साथ किसी प्रकार भी नहीं हो सकता। तथा मयासुर के इस काल का किसी भी प्राचीन आर्ष ग्रन्थ में प्रमाण नहीं।

११—मानव उत्पत्ति से पूर्व का काल ऐतिहासिक कदापि नहीं कहा जा सकता। तथा दिन रात और वर्ष आदि की उत्पत्ति का कारण सूर्य है, सूर्य सृष्टि के प्रारम्भ में नहीं बनता।

१२—महर्षि के उक्त निर्णयों से वेदादि शास्त्रों की सब मान्यतायें सुरक्षित रहती हैं। तथा विपक्षियों के किसी प्रकार के आक्षेप भी नहीं बनते अतः उक्त निर्णय में उनका बड़ा भारी गाम्भीर्य प्रतीत होता है। जिसके सामने विचारकों को नत मस्तक होना ही उचित है।

१३—सृष्टि बनने की प्रक्रिया का प्रारम्भ ऋषि मान्य संवत् से छः चतुर्युगी पूर्व हो चुका, यह निर्णय भी ऋषि वचनों से हो जाता है। जिसके निर्णय में संदेह नहीं रहता। कोई भी विचारक ऋषि का पक्ष इसके विपरीत उनके वचनों से सिद्ध नहीं कर सकता। एवं उनके वचनों के प्रकाश में यह भी सिद्ध नहीं कर सकता कि उनके वचनों से सृष्टि बनने के काल का निर्णय नहीं होता।

१४—महर्षि की मान्यता से मानवोत्पत्ति, वेदोत्पत्ति, जगदुत्पत्ति तीनों कालों का पता चल जाता है तथा सृष्टि बनने के काल का भी। किन्तु मयासुर से उक्त बातों का पता नहीं चलता।

१५—मयासुर ने वेदोत्पत्ति काल तो बिलकुल लिखा ही नहीं। ग्रह, नक्षत्र, देव-दैत्यादि चराचर की सृष्टि का एक ही काल १ करोड़ सत्तर लाख चौंसठ सहस्र वर्ष कल्प प्रारम्भ के पश्चात् का लिखा है। जिसका स्वयं उनके वचन से विरोध है क्योंकि जलप्लव कल्प प्रारम्भ होते ही हो गया जब सृष्टि बनी ही पश्चात् है तो जलप्लव प्रारम्भ में कैसे हुआ, उनकी उक्त दोनों मान्यताओं का एक सहस्र वर्षों से पूर्व के

बने किसी भी ग्रन्थ में कथन नहीं है। उनकी यह मान्यताएँ मनु जी की मान्यताओं के विरोधी भी हैं। मनु से निर्धारित १४ मन्वन्तर और प्रति मन्वन्तर ७१ चतुर्युगियों के होने पर उठने वाली संख्या-विषयक शंका का ठीक समाधान इससे नहीं होता। किन्तु महर्षि की मान्यता से ठीक समाधान हो जाता है।

१६—मयासुर अनुसार सन्धिकाल जोड़ने में अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न होते हैं उन आक्षेपों का विपक्षियों ने आजतक उत्तर नहीं दिया। उन दोषों का कथन इस ग्रन्थ के पूर्व पृष्ठों में किया हुआ है।

१७—मयासुर रचित सूर्यसिद्धान्त अनार्ष ग्रन्थ है जिसमें बहुत अधिक वेद-विरुद्ध, ज्योतिषशास्त्र-विरुद्ध मान्यतायें हैं जिनका कथन श्री ब्रह्मचारी वेदव्रत जी ने इस ग्रन्थ में संक्षेप से किया है।

१८—श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक अपनी वेदवाणी मासिक पत्रिका में अभी तक भी वेद तथा सृष्टि-संवत् १९७२९४९०७७ लिखते हैं। यह मान्यता तो आर्य जगत् में किसी की भी नहीं है। इस संख्या से तो सिद्ध होता है कि परमात्मा ने सृष्टि बनाने के प्रारम्भ में ही वेदों का ज्ञान जड़ प्रकृति को ही दे दिया। अथवा मानव उत्पत्ति में समय कुछ भी नहीं लगा जिसका महर्षि तथा वैदिक मान्यता से स्पष्ट विरोध है।

१४—श्री पं० उदयवीर जी आदि आर्य विद्वानों की यह मान्यता भी गलत है कि 'आर्यसमाज से इतर समाज में सर्वत्र १९७२९४९०७७ वर्ष का संवत् माना जाता है। पुराण तथा ज्यौतिष का आर्य भट्टिका आदि अर्वाचीन ग्रन्थों में मयासुर वाली सन्धि को नहीं माना गया है। इसके स्थान पर एक हजार चतुर्युगी के बराबर बराबर १४ विभाग किये गये हैं, जिसका मयासुर की मान्यता से विरोध है। एवं अब कुछ पञ्चाङ्गों में ऋषि प्रतिपादित संवत् आने लगा है। शेष सब पञ्चाङ्गों में १९५५८८५०७२ संवत् आता है १९७२९४९०७७ संवत् किसी में भी नहीं आता।

१०—महर्षि दयानन्द के अनुसार ही मानव उत्पत्ति काल वाले सृष्टि-संवत् को समस्त पौराणिक जगत् भी प्रयोग करता है। पौराणिक लोग मयासुर अनुसार मानव उत्पत्ति के सृष्टि-संवत् काल का प्रयोग करते हैं इतना दोनों में भेद है। किन्तु आश्चर्य है कि आर्य जगत् महर्षि की इस शुद्ध मान्यता के विरुद्ध मानता और प्रयोग करता है। जब की तथ्य यह है कि वह प्रथम क्षोभ उत्पन्न होने का काल भी नहीं है।

आर्यों को इस विषय में भ्रम हो गया। जिससे उन्होंने ऋषि के शुद्ध संवत् को बदल कर अशुद्ध संवत् का प्रयोग आरम्भ कर दिया। अब तक भी प्रायः ऋषि विरुद्ध अशुद्ध संवत् का प्रयोग हो रहा है। आर्यों को हठ, दुराग्रह और अभिमान का त्याग कर अब सत्य का ग्रहण करना ही उचित है। यह हमारी प्रार्थना है और यही आर्यसमाज के चतुर्थ नियम के अनुकूल होगा।

सत्यार्थप्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ घर-घर पहुँचाएँ

सफेद कागज सुन्दर छपाई शुद्ध संस्करण

वितरण करने वालों के लिए प्रचारार्थ।

केवल १५०) सैकड़ा	केवल २००) सैकड़ा
साईज २२×३०÷३२	साईज २३×३६÷१६
पृष्ठ ८६४	पृष्ठ ४२०

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

४५५ खारी बावली, दिल्ली-६

फोन नं० २२६५४७, ५२८३६०

दयानन्द सन्देश (मासिक)

पत्र का फार्म ४ के अन्तर्गत विवरण

१. प्रकाशन स्थान	२ एफ, कमला नगर दिल्ली-७
२. प्रकाशन अवधि	मासिक
३. मुद्रक का नाम	सत्यपाल धवन
क्या भारत का नागरिक है	भारतीय
पता	८० डी कमला नगर, दिल्ली-७
४. प्रकाशक का नाम	दीपचन्द आर्य
क्या भारत का नागरिक है	भारतीय
पता	२ एफ, कमला नगर, दिल्ली-७
५. सम्पादक का नाम	राजवीर शास्त्री
क्या भारत का नागरिक है	भारतीय
यदि विदेशी हैं तो मूल देश	
पता	१७८१, मामूरपुर नरेला, दिल्ली-४०
६. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचारपत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के सांझेदार या हिस्सेदार हों।	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट २ एफ, कमला नगर दिल्ली-७

मैं दीपचन्द आर्य, एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गए विवरण सत्य हैं।—

आर्षसाहित्य प्रचार ट्रस्ट के प्रकाशन

सत्यार्थप्रकाश—स्थूलाक्षर, कल्याण साईज पूर्ण कपड़ा जिल्द, मू० १६)

सत्यार्थप्रकाश—बड़ा आकार (साईज २३ + ३६ ÷ १६, मू० ४)
वितरण करने वालों के लिए प्रचारार्थ २००) सैकड़ा।

सत्यार्थप्रकाश—पुस्तक साईज (मोटा टाईप) मू० सजिल्द ५.७५ फुल कपड़ा ६.५० सजिल्द ५) प्रचारार्थ ३००) सैकड़ा।

सत्यार्थप्रकाश—गुटका, पृष्ठ ८४८, सफेद कागज, सुन्दर छपाई, फुल कपड़ा कवर, मू० ३.२० प्रचारार्थ १५०) सैकड़ा।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका—कल्याण साईज मोटा टाईप, सजिल्द ८)

दयानन्दलघुग्रन्थसंग्रह—महर्षि रचित १४ ग्रन्थों का संग्रह, पृष्ठ ४४८, मू० अजिल्द ४) सजिल्द ४-५०

आर्याभिविनय—पदार्थप्रदीप टीकासहित, मैपलिथो कागज, मूल्य अजिल्द २)

पञ्चमहायज्ञविधि—पृष्ठ ५२, मू०)५० मोटे कवर सहित, सैकड़ा २५)

दयानन्द सन्ध्याहवन-पद्धति—कागज चिकना मैपलिथो, अजिल्द २) सजिल्द २)५०

महर्षि दयानन्द सरस्वती जीवनचरित्र—अमर शहीद पं० लेखराम रचित, उर्दू भाषा का हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ १०४०, कल्याण साईज, मू० २०)

दयानन्ददिग्विजयार्क—बड़ा आकार, सजिल्द ८)

सृष्टिसंवत् विचार—पृष्ठ १६४, मू० १.५०

कालाकालमृत्युविचार—पृष्ठ १२०, मू० १.५०

यजुर्वेदभाष्य का ४०वां अध्याय—महर्षि दयानन्द भाष्य, सव्याख्या १)

वेदार्थसमीक्षा—पृष्ठ २१२, मू० १.५०

दयानन्द-सन्देश मासिक पत्रिका—उत्तमोत्तमलेख, वार्षिक मू० ६)

सत्यार्थप्रकाश के संशोधनों की समीक्षा—पृष्ठ २०८, मू० ५० पैसे

मुद्रक—सैन्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस, ८० डी, कमला नगर, दिल्ली-७